# अथ सप्तमं काण्डम्

**अथ षोडशः प्रपाठकः**

गत सूक्त में वर्णित (६.१४२ में) यव के महत्त्व को समझकर यव को ही मुख्य भोजन बनाता हुआ यह साधक 'अथर्वा' बनता है (अ-थर्व)=न डाँवाडोल वृत्तिवाला। यह ब्रह्मवर्चस् की कामना करता हुआ 'ब्रह्मवर्चसकामः' कहलाता है। इस काण्ड के प्रथम ७ सूक्तों का ऋषि यही है—

## १. [ प्रथमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### ज्ञान+ऋत+नित्य स्वाध्याय+प्रभुनामस्मरण

**धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि।**
**तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः॥ १॥**

१. 'ब्रह्मवर्चसकाम अथर्वा' वे हैं **ये**=जो **धीती**=ध्यान के द्वारा **वा**=निश्चय से अपने को **वाचः अग्रम्**=वाणी के अग्रभाग में **अनयन्**=प्राप्त कराते हैं, अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में बड़े ध्यानपूर्वक आचार्य-मुख से वेदवाणी को सुनते हैं और इसके अध्ययन में अग्रभाग (First division) में स्थित होते हैं। अब ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ में आने पर **ये**=जो **वा**=निश्चय से **मनसा ऋतानि अवदन्**=मन से ऋत को ही बोलते हैं—जो कभी अनृतभाषण की बात मन में नहीं आने देते। २. ये व्यक्ति **तृतीयेन**=जीवनयात्रा के तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ) में **ब्रह्मणा वावृधानाः**=ज्ञान से—वेदज्ञान से खूब ही बढ़ते हैं, अर्थात् **'स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्'** स्वाध्याय में नित्य लगे हुए ये लोग ज्ञानवृद्ध बनते हैं तथा **तुरीयेण**=चौथे आश्रम में, अर्थात् संन्यस्त होकर **धेनोः**=सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कामधेनुरूप प्रभु के **नाम अमन्वत**=नाम का मनन करते हैं।

**भावार्थ**—हम अथर्वा तभी बनेंगे यदि १. प्रथमाश्रम में ध्यानपूर्वक अध्ययन करते हुए ज्ञान के दृष्टिकोण से अग्रभाग में स्थित होगें, २. यदि द्वितीयाश्रम में कभी झूठ बोलने का स्वप्र भी न लेंगे, ३. तृतीय में वेद ज्ञान में निरन्तर बढ़ते हुए, ४ तुरीय में प्रभुनामस्मरण करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥

### सच्चा पुत्र

**स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत्स भुवत्पुनर्मघः।**
**स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः१ः स इदं विश्वमभवत्स आभवत्॥ २॥**

१. **सः पुत्रः**=गतमन्त्र में जिस अथर्वा की जीवनयात्रा का चित्रण किया है, वह सच्चा पुत्र (पुनाति त्रायते)—अपने जीवन को पवित्र व रक्षित करनेवाला **पितरं वेद**=अपने पिता प्रभु को जाननेवाला होता है। **सः मातरं वेद**=वह अपनी इस मातृभूत वेदवाणी को जानता है। **सः सूनुः भुवत्**=वह अपने माता-पिता का सच्चा पुत्र होता है। **पुनः**=फिर **सः**=वह **मघः भुवत्**=ऐश्वर्य का पुञ्ज बनता है अथवा **'मघ इति मखनाम'** वह यज्ञशील होता है। २. **सः**=वह **द्याम्**=अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को **और्णोत्**=आच्छादित करता है—उसे लोभ के आक्रमण से विनष्ट नहीं

होने देता। **अन्तरिक्षम्**=वह हृदयान्तरिक्ष को आच्छादित करता है—उसे क्रोध के आक्रमण से बचाता है। परिणामतः वह **स्वः**=सुख को प्राप्त होता है। (स्वर्गं व्याप्नोति—सा०)। **सः**=वह लोभ, क्रोध आदि से ऊपर उठकर **इदं विश्वम् अभवत्**=यह सम्पूर्ण विश्व हो जाता है—**'वसुधैव कुटुम्बकम्'** पृथिवी को ही अपना परिवार जानता है। **सः आभवत्**=अन्ततः मुक्त होकर **सर्वतः**=ब्रह्म के साथ (आ) विचरता है, ब्रह्म के साथ होता है।

**भावार्थ**—हम पिता प्रभु व माता वेद को जानें। हम माता-पिता के सच्चे पुत्र बनकर यज्ञशील हों। मस्तिष्क में लोभ न आने दें, हृदय में क्रोध से दूर रहें। इसप्रकार सुख का व्यापन करें। वसुधा को ही परिवार जानें। मुक्त होकर सर्वत्र प्रभु के साथ विचरें।

## २. [ द्वितीयं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### अथर्वाणं यज्ञम्

**अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्।**
**य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥ १॥**

१. **अथर्वाणं इमम्** (अथर्वा वै प्रजापतिः। गो० ब्रा० १.२.१.६)=न डाँवाडोल होनेवाले—स्थिर—इस प्रभु को **यः**=जो **मनसा चिकेत**=मनन के द्वारा जानता है, वह तू **नः प्रवोचः**=हमें उस ब्रह्म का उपदेश कर। **तम्**=उस प्रभु को **इह इह ब्रवः**=यहाँ—इस जन्म में ही और इस जन्म में ही उपदिष्ट कर। चूँकि **'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः'** इस जन्म में ही प्रभु को जान लिया तभी कल्याण है, अन्यथा कल्याण सम्भव नहीं। २. उस प्रभु को उपदिष्ट कर जो **पितरम्**=सबका रक्षण करनेवाला है, **देवबन्धुम्**=देववृत्तिवाले व्यक्तियों को अपने साथ बाँधनेवाला है, **मातुः गर्भम्**=इस मातृभूत पृथिवी के अन्दर व्यापक है, **पितुः असुम्**=इस द्युलोकरूप पिता की प्राणशक्ति है—द्युलोकस्थ सूर्य की किरणों में प्राणशक्ति को स्थापित करनेवाला है, **युवानम्**=सदा युवा है, अजरामर है, अथवा (यु मिश्रणामिश्रणयोः) बुराइयों को पृथक् करनेवाला व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाला है, **यज्ञम्**=पूजनीय संगतिकरणयोग्य व समर्पणीय है।

**भावार्थ**—ब्रह्म का ज्ञाता पुरुष हमें इसी जन्म में ब्रह्म का उपदेश दे। उपनिषद् के शब्दों में कल्याण इसी बात में है कि हम शरीर-विसर्जन से पूर्व ही प्रभु को जान लें **( इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः। ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते )**।

## ३. [ तृतीयं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### विष्ठाः—घृणिः

**अया विष्ठा जनयन्कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः।**
**स प्रत्युदैद्बृहणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा ∫ तन्व ∫ मैरयत॥ १॥**

१. **विष्ठा** (विष्ठाः)=विशेषरूप से सर्वत्र स्थितिवाले वे प्रभु **अया**=इस प्रकृति के द्वारा **कर्वराणि जनयन्**=सब कर्मों को प्रादुर्भूत कर रहे हैं। सब क्रियाएँ प्रकृति में ही होती हैं, इन क्रियाओं को प्रभु प्रादुर्भूत करते हैं। **सः हि घृणिः**=वे प्रभु ही प्रकाशमान व दीप्त हैं। **उरुः**=विशाल हैं, **वराय गातुः**=वरणीय कर्मफल के लिए प्रभु ही मार्ग हैं, अर्थात् यदि हम सब प्रभु के निर्देश के अनुसार चलेंगे तो वरणीय उत्तम फलों को प्राप्त करेंगे। २. **सः**=वे प्रभु ही

**धरुणम्**=सबका धारण करनेवाले **मध्वः अग्रम्**=मधुर वेदज्ञान के सार को **प्रत्युदैत्**=**( अन्तर्भावितण्यर्थः )**=स्तोताओं के लिए प्रकाशित करते हैं, और **स्वया तन्वा**=अपने विराडात्मक शरीर से **तन्वम्**=समस्त प्राणिशरीरों को **ऐरयत**=प्रेरित करते हैं—प्रभु विराट् पिण्ड से सब प्राणिशरीरों को उत्पन्न करते हैं।

**भावार्थ**—सर्वत्र व्याप्त व दीप्त प्रभु विराट्पिण्ड से सब प्राणियों के शरीरों का निर्माण करते हैं, वे हमें धारणात्मक वेदज्ञान प्राप्त कराते हैं। यदि हम वेद के निर्देश के अनुसार चलते हैं तो वरणीय फलों को प्राप्त करते हैं।

## ४. [ चतुर्थं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**वायुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### तेतीस बड़वाओं का विमोचन

**एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च।**
**तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च॥ १॥**

१. हे **वायो**=आत्मन्! **( वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् )**! तू इस शरीर में **सुहुते**=जिसमें चारों ओर प्रभु के उत्तम दान विद्यमान हैं, **एकया च दशभिः च**=एक और दस, अर्थात् ११ पृथिवीस्थ देवताओं के अंशों से, **द्वाभ्यां विंशत्या च**=दो और बीस, अर्थात् पृथिवीस्थ और अन्तरिक्षस्थ बाईस देवांशों से **तिसृभिः च त्रिंशता च**=तीन और तीस, अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोकस्थ देवताओं से **( ये अन्तरिक्ष एकादशस्थ ये पृथिव्यामेकादशस्थ ये दिव्येकादशस्थ० )** जो इस शरीररथ की **वियुग्भिः**=(विशेषेण युज्यन्ते रथे) बड़वाएँ हैं, उनसे **वहसे**=इस शरीर-रथ का मार्ग पर वहन करता है। २. तू इसप्रकार इनके द्वारा रथ का वहन कर कि यात्रा को पूर्ण करके **ताः**=उन्हें **इह**=यहाँ ही **विमुञ्च**=खोल देवे। जीवन-यात्रा को पूर्ण कर लेने से उनकी आवश्यकता ही न रह जाए। प्रभु शरीर-रथ को इस यात्रा की पूर्ति के लिए ही तो देते हैं, और इसमें सब देवांशों का स्थापन करते हैं **'सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते'**। ये देवांश इस शरीर-रथ के घोड़े हैं। यात्रा पूर्ण हुई और ये अनावश्यक हो गये। यही इनका खोल देना है, यही मुक्ति है।

**भावार्थ**—इस शरीर-रथ में सर्वत्र प्रभु के अद्भुत दान विद्यमान हैं। इस शरीर-रथ में प्रभु ने तेतीस देवताओं के अंशों को घोड़ियों के रूप में जोता है। इस यात्रा को पूर्ण करके हम इसी जीवन में इन्हें खोलनेवाले बनें।

## ५. [ पञ्चमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### देवपूजा-संगतिकरण-दान

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**
**ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ १॥**

१. प्रभु यज्ञरूप हैं, सब-कुछ देनेवाले हैं (यज दाने)। इस **यज्ञम्**=सर्वप्रद पूजनीय प्रभु को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यज्ञेन**=यज्ञ से **अयजन्त**=पूजते हैं। यज्ञरूप प्रभु का पूजन यज्ञ के द्वारा ही होता है। 'यज्ञ' में तीन बातें हैं **'यज देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु'** (क) एक तो बड़ों का आदर करना (ख) दूसरे, परस्पर मिलकर चलना (संगतिकरण) तथा (ग) कुछ-न-कुछ देना। **तानि**=वे 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' ही **प्रथमानि धर्माणि आसन्**=मुख्य

(सर्वश्रेष्ठ) धर्म थे। २. इन यज्ञों द्वारा **महिमानः** (मह पूजायाम्)=प्रभु का पूजन करनेवाले **ते**=वे देव **ह**=निश्चय से **नाकम्**=मोक्षलोक को **सचन्त**=प्राप्त होते हैं, **यत्र**=जिस मोक्ष में **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले—नीरोग व निर्मल लोग, **साध्याः**=साधना की प्रवृत्तिवाले लोग अथवा परहित साधन में प्रवृत्त व्यक्ति तथा **देवाः**=देववृत्तिवाले पुरुष **सन्ति**=होते हैं।

**भावार्थ**—यज्ञों द्वारा प्रभुपूजन करते हुए हम मोक्ष प्राप्त करें। नीरोग, निर्मल, परहितसाधन में प्रवृत्त देवों का ही मोक्ष में निवास होता है।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## यज्ञः बभूव, स आबभूव

**यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः।**
**स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु॥ २॥**

१. **यज्ञो बभूव**=वह पूजनीय प्रभु सदा से है, **स आ बभूव**=वह सर्वत्र—चारों ओर विद्यमान है, **सः प्रजज्ञे**=वह इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रादुर्भूत करता है, **सः उ वावृधे पुनः**=फिर वही इस ब्रह्माण्ड का वर्धन करता है। २. **सः**=वे प्रभु ही **देवानाम् अधिपतिः बभूव**=सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि सब देवों के अधिपति हैं। **सः**=वे प्रभु ही **अस्मासु**=हममें **द्रविणम् आदधातु**=धन का धारण करें। प्रभु यज्ञ हैं—देनेवाले हैं। वे हमें जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक धन दें।

**भावार्थ**—वे यज्ञरूप प्रभु सदा से हैं—सर्वत्र हैं। वे इस संसार को प्रादुर्भूत करते हैं, प्रलयानन्तर फिर इसका वर्धन करते हैं। वे सब देवों के स्वामी हैं, हमारे लिए भी आवश्यक धन देते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

## प्रभु का उपासन व तत्त्वदर्शन

**यद्देवा देवान्हविषायजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन।**
**मदेम तत्र परमे व्यो ∫ मन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य॥ ३॥**

१. **यत्**=जब **देवाः** (आत्मविषयविद्यया दीव्यन्ति)=आत्मज्ञान से दीप्त होनेवाले देव **अमर्त्येन मनसा**=(मर्त्यशब्देन क्षयिष्णवो बाह्यविषया उच्यन्ते) विनाशिविषयों में अनासक्त मन के साथ **अमर्त्यान् देवान्**=(देवनसाधनभूता इन्द्रियवृत्तयो देवाः, तासां विषयेषु सातत्येन प्रवर्तनादमर्त्यत्वाभिधानमथवा तत्त्वविद्योदयपर्यन्तमिन्द्रियवासनानां मनसश्चावस्थानाद् अविनश्वरत्वम्) अमर्त्य इन्द्रियों को **हविषा**=हवि के द्वारा त्यागपूर्वक अदन के द्वारा **अयजन्त**=प्रभु के साथ संगत करते हैं। हम भी **तत्र**=उस सर्वजगदधिष्ठान व अधिष्ठानान्तरशून्य अतएव **परमे**=परम-स्वमहिमप्रतिष्ठव्योमनि—व्योमवत् असंग, सर्वगत, चिदानन्दलक्षण प्रभु में **मदेम**=आनन्द का अभुभव करें और **सूर्यस्य**=सुष्ठु प्रेरक उस प्रभु के **उदितौ**=उदित होने पर—साक्षात्कार होने पर **तत्**=उस प्रकाशमान तत्त्व को **पश्येम**=स्वात्मतया अनुभव करें।

**भावार्थ**—देव हवि के द्वारा मन के साथ इन्द्रियों को प्रभु के साथ जोड़ते हैं। हम भी उस परम व सर्वव्यापक प्रभु में आनन्द का अनुभव करें और उस प्रभु के हृदय में उदित होने पर तत्त्व के द्रष्टा बनें।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## पुरुषमेध

**यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत।**
**अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे॥ ४॥**

१. **यत्**=यह जो **पुरुषेण हविषा**=पुरुषरूप हवि के द्वारा, अर्थात् प्राजापत्य यज्ञ में अपनी ही आहुति दे देने के द्वारा **देवाः**=देवजन **यज्ञं अतन्वत**=यज्ञ का विस्तार करते हैं तो **अस्ति नु तस्माद् ओजीयः**=उससे भी अधिक शक्तिशाली क्या कोई यज्ञ हो सकता है? **यत्**=जो **विहव्येन**=विशिष्ट हव्य के द्वारा—पुरुषरूप हवि के द्वारा **ईजिरे**=उस प्रभु की उपासना करते हैं। २. वस्तुतः **'सर्वभूतहिते रतः'** सब प्राणियों के हित में लगे हुए पुरुष ही प्रभु के सच्चे उपासक हैं। यही पुरुषमेध यज्ञ है। इससे उत्तम हव्य और कोई हो ही क्या सकता है? यही **'विहव्येन यजन'** है, यही ओजस्वितम है।

**भावार्थ**—हम अपने को ही प्राजापत्य यज्ञ की आहुति बनाएँ, अर्थात् लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त रहें। यही प्रभु का ओजस्वितम पूजन है।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## शुना-गोरंगैः ( प्राणायाम+स्वाध्याय )

**मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।**
**य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥ ५॥**

१. **मुग्धाः**=सरल व निर्दोष (Simple, innocent) **देवाः**=देव **उत**=निश्चय से **शुना**=(श्वि गतिवृद्ध्योः) गतिशील प्राण के द्वारा **अयजन्त**=उस प्रभु का उपासन करते हैं। प्राणायाम के द्वारा चित्तवृत्तिनिरोध से प्रभु में मन को लगाते हैं। **उत**=और **गोरङ्गैः**=ज्ञान की वाणी (वेदधेनु) के अंगों से (अगि गतौ)—ज्ञानों से **पुरुधा अयजन्त**=उस प्रभु का खूब ही यजन करते हैं। प्रभु के उपासन के लिए ये 'प्राणायाम व स्वाध्याय' को साधन बनाते हैं। २. इन देवों में से **यः**=जो भी **इमं यज्ञम्**=इस उपासनीय परमात्मा को **मनसा चिकेत**=मन से जानता है, हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करता है, वह तू **नः प्रवोचः**=हमारे लिए भी इस ब्रह्म का उपदेश कर। **तम्**=उस प्रभु को **इह इह ब्रवः**=यहाँ—इसी जीवन में और इस जीवन में ही हमारे लिए उपदिष्ट कर।

**भावार्थ**—**'सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्'** कुटिलता मृत्यु का मार्ग है और सरलता प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है। हम सरल बनकर प्राणायाम व स्वाध्याय द्वारा प्रभु को जानें, मन में—हृदय में प्रभु का दर्शन करें। अन्य लोगों को भी प्रभु-प्राप्ति के मार्ग का उपदेश करें।

## ६. [ षष्ठं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**अदितिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## अदिति की विभूति का वर्णन

**अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।**
**विश्वेदेवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ १॥**

१. (**'अदितिः'** इति पृथिवीनाम नि० १.१, **'इयं पृथिवी वै देव्यदितिः'** तै० १.४.३.१) **अदितिः**=यह अदीना व अखण्डनीया पृथिवी ही **द्यौः**=द्योतनशील स्वर्ग है। **अदितिः अन्तरिक्षम्**=यह अदिति ही हमारे लिए विशाल अवकाश को प्राप्त करानेवाली है। **अदितिः माता**=यह पृथिवी ही हमारी माता है। **सः पिता सः पुत्रः**=वही पिता व पुत्र है। यह हमारा निर्माण करती है (माता), रक्षण करती है (पिता), हमें पवित्र व रक्षित करती है (पुनाति त्रायते)। २. **अदितिः विश्वेदेवाः**=यह अदिति ही सब देव हैं, सब देवों का निवास-स्थान है। **पञ्च जनाः अदितिः**='ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद' रूप में विभक्त यह प्रजा अदिति

ही है। **जातम् अदितिः**=जो उत्पन्न हो चुके हैं वे भी अदिति ही हैं, **जनित्वम् अदितिः**= जो उत्पत्स्यमान (उत्पन्न होनेवाले) हैं, वे सब भी अदिति ही हैं। इसप्रकार यहाँ मन्त्र में अदिति की विभूति का वर्णन हुआ है। (इत्यदितेर्विभूतिमाचष्टे—नि० ४।२३)

**भावार्थ**—पृथिवी 'अदिति' है। यही द्युलोक है, अन्तरिक्ष है, माता-पिता व पुत्र है। अदिति ही विश्वेदेव, पञ्चजन, जात व जनित्व है।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**अदितिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

## तुविक्षत्रा-सुप्रणीति

**महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे।**
**तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्॥ २॥**

१. इस **महीम्**=महती व महनीया, **सुव्रतानां मातरम्**=शोभनकर्मा पुरुषों की मातृस्थानीया, **ऋतस्य पत्नीम्**=सत्य व यज्ञ की पालयित्री, **उ**=और **तुविक्षत्राम्**=बहुत बल व धनवाली, **अजरन्तीम्**=क्षीण न करनेवाली, **उरूचीम्**=बहुत दूर तक गई हुई, विशाल, **सुशर्माणम्**=उत्तम सुख देनेवाली, **सुप्रणीतिम्**=सुख से कर्मों का प्रणयन करनेवाली **अदितिम्**=अखण्डनीया व अन्नों को देनेवाली (अद्) इस पृथिवी को **अवसे**=रक्षण के लिए **सुहवामहे**=उत्तमता से पुकारते हैं।

**भावार्थ**—यह भूमिमाता यज्ञों का पालन करनेवाली व हमें क्षीण न होने देनेवाली हैं। उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाली व सम्यक् कर्मों का प्रणयन करनेवाली है।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**अदितिः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

## दैवीं नावम्

**सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।**
**दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ ३॥**

१. **सुत्रामाणम्**=**( सुष्ठु त्रायमाणा )**=सम्यक् रक्षा करनेवाली, **पृथिवीम्**=विस्तीर्णा, **द्याम्**=द्योतमान व अभिगन्तव्य, **अनेहसम्**=निष्पाप—जहाँ पर पापी मनुष्यों का वास नहीं है, **सुशर्माणम्**=उत्तम सुख देनेवाली, **अदितिम्**=अखण्डनीया, **सुप्रणीतिम्**=सुख से उत्तम कर्मों का प्रणयन करनेवाली, **देवीम् नावम्**=जो देव (प्रभु) को प्राप्त करानेवाली नौका ही है, वह नौका जोकि **सु अरित्राम्**=उत्तम चप्पुओंवाली व **अस्रवन्तीम्**=न चूनेवाली है, ऐसी उस पृथिवीरूप नाव पर हम **अनागसः**=निष्पाप जीवनवाले होते हुए, **स्वस्तये**=कल्याण के लिए **आरुहेम**=आरूढ़ हों।

**भावार्थ**—यह पृथिवी हमारे लिए एक दैवी नौका बने। यह हमें विषयसागर में निमग्न न करके, भवसागर से पार करनेवाली हो।

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )**॥ देवता—**अदितिः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

## त्रिवरूथं शर्म

**वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।**
**यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षꣳ सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात्॥ ४॥**

१. **वाजस्य प्रसवे**=अन्न की उत्पत्ति के निमित्त **नु**=अब **मातरम्**=इस अन्न की निर्मात्री महती **अदितिं नाम**=अदीना व अखण्डनीया इस नामवाली **महीम्**=पृथिवी को **वचसा करामहे**=वेदनिर्देश के अनुसार जोतते और बोते हैं, अर्थात् इसे कृष्ट करके अन्न उत्पादन के लिए यत्नशील होते हैं। २. **यस्याः उपस्थे**=जिस अदिति की गोद में **उरु अन्तरक्षिम्**=विशाल अवकाश है, **सा**=वह अदिति **नः**=हमारे लिए **त्रिवरूथम्**=(वरूथं-Wealth) तीनों धनोंवाला

'शरीर के स्वास्थ्य, मन के नैर्मल्य व बुद्धि के वैशद्य'वाला **शर्म**=सुख **नियच्छात्**=दे।

**भावार्थ**—इस पृथिवी को कृष्ट करके हम अन्नोत्पादन करें। इसकी विशाल गोद में हमें 'स्वास्थ्य, नैर्मल्य व बुद्धि-वैशद्य' का सुख प्राप्त हो।

## ७. [ सप्तमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( ब्रह्मवर्चसकामः )** ॥ देवता—**अदितिः** ॥ छन्दः—**आर्षीजगती** ॥

### आदित्यों का स्थान, दैत्यों के ऊपर

**दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम्।**
**तेषां हि धाम गभिषक्समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन ॥ १ ॥**

१. दिति के पुत्र दैत्य हैं, अदिति के आदित्य। **दिति**=खण्डन—तोड़-फोड़ करनेवाले दैत्य हैं, खण्डन न करनेवाले, निर्माता 'आदित्य' व देव हैं। **दितेः पुत्राणां धाम**=दैत्यों के तेज को **अदितेः**=अदिति के पुत्रों **देवानाम्**=देवों के तेज से **अव अकारिषम्**=नीचे करता हूँ। देव वे हैं जोकि **बृहताम्**=बड़े व विशाल हृदय हैं, तथा **अनर्मणाम्**=(अर्मन्—चक्षुरोग) चक्षुरोग से रहित हैं, अर्थात् जिनका दृष्टिकोण ठीक है। २. **तेषाम्**=उन देवों का **धाम**=तेज **हि**=निश्चय से **गभिषक्**=गम्भीर है, **समुद्रियम्**=(समुद्र इव गाम्भीर्ये) समुद्र के समान गम्भीर है, शत्रुओं से प्रवेश न करने योग्य व दुर्जय है। **नमसा**=प्रभु के प्रति नमन के दृष्टिकोण से **एनान् परः कश्चन न अस्ति**=इनसे उत्कृष्ट कोई नहीं है। ये प्रभु के प्रति नमन में सर्वाग्रणी हैं। प्रभु के प्रति नमन ही इनकी गम्भीर शक्ति का कारण है।

**भावार्थ**—आदित्यों का तेज दैत्यों के तेज से ऊपर है। इन विशालहृदय, सम्यक् दृष्टिवाले देवों का तेज गम्भीर है, शत्रुओं से दुर्जय है। ये देव प्रभु के प्रति सर्वाधिक नमनवाले हैं, इसी से सर्वोत्कृष्ट शक्तिवाले हैं।

आदित्यों का स्थान दैत्यों से ऊपर है, अतः ये उपरिबभ्रु हैं। अगले दो सूक्तों के ऋषि 'उपरिबभ्रवः' ही हैं—

## ८. [ अष्टमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### उपरिबभ्रु

**भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु।**
**अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १ ॥**

१. हे पुरुष! तू **भद्रात् अधि**=(अधि पञ्चम्यर्थानुवादी) एक मंगल से **श्रेयः**=उत्कृष्ट मंगल को **प्रेहि**=प्राप्त हो। उत्तरोत्तर तेरे मंगल की वृद्धि हो। इस संसार-यात्रा में **बृहस्पतिः**=वह ब्रह्मणस्पति प्रभु **ते पुरः एता अस्तु**=तेरा अग्रगामी (मार्गदर्शक) हो। प्रभुस्मरणपूर्वक तू अधिकाधिक मंगलकार्यों को करनेवाला बन। २. **अथ**=अब हे प्रभो! (उत्तरार्धे बृहस्पतिः सम्बोध्यते—सा०) बृहस्पते! आप **इमम्**=इस पुरुष को **अस्याः पृथिव्याः वरे**=दूर चले गये हैं शत्रु जिसके, ऐसा तथा **सर्ववीरम्**=सब वीर सन्तानोंवाला **कृणुहि**=कीजिए।

**भावार्थ**—अपने को ऊपर और ऊपर ले-जानेवाला यह 'उपरिबभ्रु' एक से दूसरे कल्याण कर्म को प्राप्त हो। प्रभु इसके मार्गदर्शक हों, इसे इस पृथिवी पर उत्कृष्ट स्थान में स्थापित करके शत्रुरहित व वीर सन्तानोंवाला बनाएँ।

## ९. [ नवमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### पूषा

**प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः।**
**उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन्॥ १॥**

१. **पूषा**=पोषक प्रभु (मार्गदर्शक देव) **पथाम् प्रपथे अजनिष्ट**=(प्रक्रान्तःपन्थाः प्रपथः) मार्गों के प्रारम्भ में प्रादुर्भूत होता है। प्रभु ही प्रत्येक मार्ग का रक्षण कर रहे हैं। वह पूषा ही **दिवः प्रपथे**=द्युलोक के प्रवेशद्वार पर और **पृथिव्याः प्रपथे**=पृथिवी के प्रवेशद्वार पर रक्षक के रूप में विद्यमान है। २. वह पूषा प्रभु **उभे**=दोनों **प्रियतमे**=अतिशयेन प्रीतिवाले **सधस्थे**=परस्पर मिलकर रहनेवाले (द्यौ पिता, पृथिवी माता) सब प्राणियों के माता व पितारूप द्यावापृथिवी को **अभि**=लक्ष्य करके **प्रजानन्**=प्राणियों से किये गये कर्मों व उन कर्मों के फलों को जानता हुआ **आ च परा च चरति**=द्युलोक से पृथिवीलोक में और पृथिवी से द्युलोक में सर्वत्र विचरते हैं। दोनों लोकों में विचरते हुए वे प्रभु सर्वप्राणिकृत कर्मों के साक्षी हैं।

**भावार्थ**—'**उपरिबभ्रु**'=उन्नति पथ का उपासक प्रभु को सब मार्गों के रक्षक के रूप में देखता है। वह प्रभु को द्युलोक से पृथिवीलोक तक सर्वत्र विचरता हुआ व सब प्राणियों के कर्मों का साक्षी होता हुआ अनुभव करता है।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### मार्गदर्शक प्रभु

**पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।**
**स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन्॥ २॥**

१. **पूषा**=वह पोषक देव **इमाः सर्वाः आशाः अनुवेद**=इन सब दिशाओं को अनुक्रम से जानता है। **सः**=वह पूषा **अस्मान्**=हमें **अभयतमेन नेषत्**=अत्यन्त भयरहित मार्ग से ले-चले। २. **स्वस्तिदाः**=वे पूषा कल्याण के देनेवाले हैं, **आघृणिः**=सर्वतो दीप्त व व्याप्त दीप्तिवाले हैं। **सर्ववीरः**=सब वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाले हैं। **प्रजानन्**=प्रकर्षेण सब मार्गों को जानते हुए वे प्रभु **अप्रयुच्छन्**=सदैव कर्मशील होते हुए **पुरः एतु**=हमारे मार्गदर्शक—अग्रगामी हों।

**भावार्थ**—पूषा प्रभु सब दिशाओं को जाननेवाले हैं, वे हमें अभयतम मार्ग से ले-चलें। वे सर्वतो दीप्त कल्याण करनेवाले प्रभु हमें वीर सन्तानों को प्राप्त कराएँ और हमारे मार्गदर्शक हों।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री** ॥

### तव व्रते

**पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि॥ ३॥**

१. हे **पूषन्**=पोषकदेव! **तव व्रते**=आपसे उपदिष्ट कर्मों में—आपकी प्राप्ति के साधनभूत यागादि कर्मों में वर्त्तमान **वयम्**=हम **कदाचन न रिष्येम**=कभी हिंसित न हों, पुत्रों, मित्रों व धनादि से वियुक्त होकर दुःखी न हों। २. **इह**=इस जीवन में **ते स्तोतारः स्मसि**=आपके स्तोता बनें, सदा आपका स्मरण करते हुए उत्तम कर्मों में ही प्रवृत्त रहें, मार्गभ्रष्ट न हों।

**भावार्थ**—हे पूषन् प्रभो! हम आपका स्मरण करते हुए, आपकी प्राप्ति के साधनभूत, आपसे उपदिष्ट कर्मों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः**॥ देवता—**पूषा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## दक्षिण हाथ

**परि॑ पू॒षा प॒रस्ता॒द्धस्तं॑ दधातु॒ दक्षि॑णम्। पुन॑र्नो॒ न॒ष्टमाज॑तु॒ सं न॒ष्टेन॑ गमेमहि॥ ४॥**

१. **पूषा**=यह पोषक प्रभु **परस्तात्**=अति दूर देश से भी धन के आदान के लिए हमें **दक्षिणं हस्तं दधातु**=कार्यकुशल हाथ प्राप्त कराएँ। हमें इसप्रकार शक्ति दें कि हम दूर-से-दूर देशों से भी धनार्जन करने में समर्थ हों। २. **नः**=हमें **नष्टम्**=नष्ट हुआ धन **पुनः आजतु**=पुनः प्राप्त हो और **नष्टेन**=उस नष्ट धन से हम **संगमेमहि**=फिर से संगत हो पाएँ।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हमें कार्यकुशल हाथ प्राप्त हों और हम नष्ट धनों को भी पुनः प्राप्त कर सकें।

कुशलता से कार्य करता हुआ यह व्यक्ति 'शौनक' बनता है (शुनम् इति सुखनाम) सुखी जीवनवाला होता है। यह शौनक ही अगले तीन सूक्तों का ऋषि है।

## १०. [ दशमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सरस्वती की आराधना

**यस्ते॒ स्तन॑ः शश॒युर्यो म॑यो॒भूर्यः सु॑म्न॒युः सु॒हवो॒ यः सु॒दत्र॑ः।**
**येन॒ विश्वा॒ पुष्य॑सि॒ वार्या॑णि॒ सर॑स्वति॒ तमि॒ह धात॑वे कः॥ १॥**

१. हे सरस्वति! **यः**=जो **ते स्तनः**=तुझ वेदवाणीरूप कामधेनु का स्तन—तेरे स्तन से प्राप्त ज्ञानदुग्ध **शशयुः**=(शशयानः अर्चतिकर्मा—नि० ३।१४ शशमानः शंसमानः=निरुक्त ६।८) उस प्रभु के गुणों का शंसन करनेवाला है, **यः मयोभूः**=जो कल्याण का सम्पादक है, **यः सुम्नयुः**=सबके सुख की इच्छा करनेवाला है, **सुहवः**=प्रार्थनीय है, **यः सुदत्रः**=जो कल्याणदान व सुधन है। २. हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठातृ देवि! **येन**=जिस स्तन से तू **विश्वा वार्याणि पुष्यसि**=सब वरणीय धनों का पोषण करती है **तम्**=उस स्तन को **इह**=यहाँ—इस जीवन में **धातवे कः**=हमारे पीने के लिए कर, हम तेरे स्तन से ज्ञानदुग्ध का पान करके वास्तविक सुख पानेवाले 'शौनक' बन पाएँ।

**भावार्थ**—वेदवाणीरूप कामधेनु का स्तन उस ज्ञानदुग्ध को प्राप्त कराता है जो प्रभु का शंसन करनेवाला व हमारा कल्याण करनेवाला है। यह सब वरणीय धनों को प्राप्त कराता है।

## ११. [ एकादशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## पर्जन्य

**यस्ते॑ पृथु स्तन॒यित्नु॒र्य ऋ॒ष्वो दैव्यः॑ के॒तुर्विश्व॑मा॒भूष॑तीदम्।**
**मा नो॑ वधीर्वि॒द्युता॑ देव स॒स्यं मोत व॑धी र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्य॥ १॥**

१. **देव**=हे द्योतनशील पर्जन्य! **ते**=तेरा **यः**=जो **पृथुः**=विस्तीर्ण **स्तनयित्नु**=गर्जनरूप शब्द करता हुआ अशनि=विद्युत् है, **यः ऋष्वः**=जो (ऋत् गतौ to go अथवा to kill) इधर-उधर गतिवाला व संहार करनेवाला है, वह **दैवः केतुः**=देव प्रभु की महिमा का प्रज्ञापक है, **इदं विश्वं आभूषति**=इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त होता है, विद्युत् की सत्ता सर्वत्र है। २. हे देव! उस **विद्युता**=अशनि से **नः**=हमारे **सस्यं**=अन्न को **मा वधीः**=मत नष्ट कर **उत**=और **सूर्यस्य रश्मिभिः**=सूर्य की सन्तापकर किरणों में **मा वधीः**=हमारे अन्न को शुष्क मत होने दे।

**भावार्थ**—हमारे खेतों में बोये हुए शालि आदि धान्य अतिवृष्टि व अनावृष्टि से नष्ट न

हो जाएँ। विद्युत्-पतन व सूर्यसन्ताप उन्हें नष्ट करके हमारे विनाश का कारण न बनें।

## १२. [ द्वादशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**सभा, समितिः, पितरश्च**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

### उत्तम शासन

**सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।**
**येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु॥ १॥**

१. सुख-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन ज्ञान-प्रधान हों (७।१०।१) तथा प्रभुकृपा से अतिवृष्टि व अनावृष्टिरूप आधिदैविक आपत्तियों से हम बचे रहें (७।११।१) इनके साथ 'शासन-व्यवस्था का उत्तम होना' नितान्त आवश्यक है। उसी का उल्लेख प्रस्तुत सूक्त में है। **सभा च मा समितिः च मा**=राजा कहता है कि सभा और समिति मेरा **अवताम्**=रक्षण करें। विद्वानों का समाज 'सभा' है, सांग्रामीण जनसभा 'समिति' है। ये दोनों **प्रजापतेः दुहितरौ**=प्रजापति की दुहिताएँ हैं, उसकी प्रपूरिका हैं (दुह प्रपूरणे)। शासन कार्य में उसके लिए सहायक होती हैं। ये दोनों **संविदाने**=प्रजारक्षण के विषय में ऐकमत्य को प्राप्त हुई-हुई राजा का रक्षण करें। २. राजा सभा व समिति के सदस्यों से कहता है कि **येन संगच्छै**=जिस सदस्य के साथ मैं बातचीत के लिए संगत होऊँ, **सः**=वह विद्वान् **मा उपशिक्षात्**=मुझे समीचीन शिक्षण करनेवाला हो। हे **पितरः**=राष्ट्र के रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पुरुषो! **संगतेषु**=इकट्ठा होने पर सभाओं में मैं **चारुःवदानि**=मधुर ही भाषण करूँ, राजा भी क्रोध से कुछ न बोले।

**भावार्थ**—विद्वज्जन-समाज (सभा) तथा सांग्रामीण जनसमाज (समिति) राजा की दुहिताएँ हैं। संगतों में सभा व समिति के सदस्यों को चाहिए कि वे अपनी ठीक सम्मति प्रकट करें और राजा इन संगतों में मधुर शब्दों का ही प्रयोग करे।

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**सभा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### नरिष्टा

**विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।**
**ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः॥ २॥**

हे **सभे**=सभे! **ते नाम विद्म**=तेरा नाम हम जानते हैं। तू **वा**=निश्चय से **नरिष्टा नाम असि**=(न रिष्टा) 'न हिंसित होनेवाली' इस नामावाली है। प्रजा से चुनी गई इस सभा को राजा अपनी मनमानी से भंग नहीं कर सकता। इसी से तू 'नर् इष्टा' प्रजास्थ लोगों की प्रिय है। **ये के च**=जो कोई भी **ते सभासदः**=तेरे सभासद हैं, **ते**=वे **मे**=मेरे लिए **सवाचसः**=मिलकर वचनवाले, एक सम्मतिवाले **सन्तु**=हों। उनकी सम्मतियाँ परस्पर विरुद्ध होकर मेरी परेशानी का कारण न बनें।

**भावार्थ**—सभा 'नरिष्टा' है—मनुष्यों की इष्ट है, उन्होंने ही इसके सदस्यों को चुना है। इसी से यह 'नरिष्टा' अहिंसित है, राजा अपनी इच्छा से इसे भंग नहीं कर सकता। सभासदों को चाहिए कि वे विचार करके राजा को एक ही सम्मति दें।

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### वर्चः विज्ञानम्

**एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे।**
**अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु॥ ३॥**

१. राजा (सभापति) कहता है कि **अहम्**=मैं **समासीनानां एषाम्**=सभा में मिलकर बैठे हुए इन सदस्यों की **वर्चः**=तेजस्विता को तथा **विज्ञानम्**=विज्ञान को **आददे**=ग्रहण करता हूँ। वैदुष्यजनित प्रभावविशेष ही 'वर्चस्' है, वेदशास्त्रार्थविषयक ज्ञान ही 'विज्ञान' है। २. हे **इन्द्र**=वाणी के अनुशासक इन्द्र! आप **माम्**=मुझे **अस्याः सर्वस्याः संसदः**=इस सारी संसद के **भगिनं**=(भग=ज्ञान) ज्ञानवाला **कृणु**=कीजिए। मैं सारी सभा के विचारों को सुननेवाला बनूँ।

**भावार्थ**—राजा सभा के सभी सदस्यों के वैदुष्यजनित प्रभावविशेष को जाने तथा वेदशास्त्रार्थ-विषयक ज्ञान से परिचित हो। वह सभा के सभी सभ्यों के विचारों को जाने।

ऋषिः—**शौनकः**॥ देवता—**मनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## एकाग्रता से प्रस्तुत विषय का विचार

**यद्वो मनः परागतं यद्बद्धमिह वेह वा।**
**तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥ ४॥**

१. सभापति कहता है कि हे सभासदो! **यत्**=जो **वः मनः**=आपका मन **परागतम्**=कहीं दूर गया हुआ है। **वा**=या **यत्**=जो आपका मन **इह इह वा**=इस-इस विषय में, अमुक-अमुक विषय में **बद्धम्**=बँधा हुआ है, **वः**=आपके **तत्**=उस मन को **आवर्तयामसि**=हम सब ओर से लौटाते हैं। हे सभ्यो! **वः मनः**=आपका मन **मयि रमताम्**=मुझमें ही रमण करे, अर्थात् यहाँ प्रस्तुत विषय का ही विचार करनेवाला हो।

**भावार्थ**—सभा में सब सभ्य एकाग्र होकर प्रस्तुत विषय का ही विचार करें।

एकाग्र होकर चिन्तन करनेवाला, अडाँवाडोल वृत्तिवाला विद्वान् 'अथर्वा' है (न थर्वति)। यही अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## १३. [ त्रयोदशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( द्विषो वर्चो हर्तुकामः )**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## उद्यन् सूर्यः ( इव )

**यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।**
**एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे॥ १॥**

१. **यथा**=जैसे **उद्यन् सूर्यः**=उदय होता हुआ सूर्य **नक्षत्राणां तेजांसि आददे**=नक्षत्रों के तेज को हर लेता है, **इव**=इसी प्रकार मैं **स्त्रीणां च पुंसां च**=चाहे स्त्रियाँ हों, चाहे पुरुष; जो भी **द्विषताम्**=शत्रु हैं, उनके **वर्चः**=तेज को—पराजित करने के सामर्थ्य को, **आददे**=अपहृत कर लेता हूँ।

**भावार्थ**—हम एकाग्र वृत्ति के बनकर 'अथर्वा' बनें। यह एकाग्रता हमें वह तेजस्विता प्राप्त कराएगी जिससे हम सब शत्रुओं के तेज का वैसे ही अभिभव कर पाएँगे, जैसेकि उदय होता हुआ सूर्य नक्षत्रों के तेज का हरण करता है।

ऋषिः—**अथर्वा ( द्विषो वर्चो हर्तुकामः )**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## सूर्योदय से पूर्व जाग जाना

**यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ।**
**उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे॥ २॥**

१. **सपत्नानाम्**=शत्रुओं में **यावन्तः**=जितने तुम **आयन्तम्**=आक्रमण के लिए आते हुए **मा**=मुझे **प्रतिपश्यथ**=देखते हो, **द्विषताम्**=उन सब प्रतिकूलदर्शी तुम शत्रुओं के **वर्चः**=पराक्रमरूप

तेज को, इसप्रकार **आददे**=अपहृत कर लेता हूँ **इव**=जैसेकि **उद्यन् सूर्यः**=उदय होता हुआ सूर्य **सुप्तानाम्**=सोये हुओं के तेज को छीन लेता है।

**भावार्थ**—शत्रुओं के तेज को मैं इसप्रकार छीन लूँ, जैसेकि उदय होता हुआ सूर्य सोये हुओं के तेज को छीन लेता है। (अतः सूर्योदय से पूर्व जाग जाना आवश्यक ही है)।

## १४. [ चतुर्दशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### सत्यसवं रत्नधाम्

**अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्।**
**अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम्॥ १॥**

१. **त्यम्**=उस प्रसिद्ध **देवम्**=द्योतनात्मक, प्रकाशस्वरूप **ओण्योः**=(सर्वस्य अवित्र्योः) सबके रक्षक द्यावापृथिवी के **सवितारम्**=उत्पादक प्रभु की **अभि अर्चामि**=प्रातः-सायं पूजा करता हूँ। २. उन प्रभु की पूजा करता हूँ जोकि **कविक्रतुम्**=कवियों, मेधावियों के कर्मोंवाले हैं, **सत्यसवम्**=सत्य की प्रेरणा देनेवाले हैं, **रत्नधाम्**=रमणीय धनों के धारण करनेवाले हैं, **अभि-प्रियम्**=आभिमुख्येन सबके प्रीतिकर हैं और अतएव **मतिम्**=सबसे मनन करने के योग्य हैं।

**भावार्थ**—मैं प्रभु का पूजन करता हूँ। वे प्रभु देव हैं, द्यावापृथिवी के उत्पादक हैं, मेधावी कर्मोंवाले हैं, सत्य के प्रेरक व रत्नों को धारण करनेवाले हैं, प्रीतिकर व मन्तव्य हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### अमतिः भाः

**ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि।**
**हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात्स्वः॥ २॥**

१. **यस्य**=जिसकी **अमतिः** (अमनशीला—व्यापनशीला)=चारों ओर व्याप्त होनेवाली **भाः**=दीप्ति **ऊर्ध्वा**=उत्कृष्ट होती हुई **अदिद्युतत्**=सम्पूर्ण विश्व को द्योतित करती है। २. **सवीमनि**=उस प्रभु की अनुज्ञा में ही **हिरण्यपाणिः**=हितरमणीय किरणरूप हाथोंवाला **सुक्रतुः**=उत्तम शक्तिवाला सूर्य **कृपात्**=अपने सामर्थ्य से **स्वः अमिमीत**=प्रकाश का निर्माण करता है।

**भावार्थ**—प्रभु की ज्योति से सारा विश्व द्योतित होता है। प्रभु की अनुज्ञा में ही सूर्य प्रकाश का निर्माण करता है। यह सूर्य किरणरूप हाथों में सब प्राणदायी तत्त्वों को लिये हुए हम सबका हित करने में प्रवृत्त है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै

**सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।**
**अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः॥ ३॥**

१. हे **देव**=सब-कुछ देनेवाले प्रभो! **हि**=निश्चय से आपने ही **प्रथमाय**=सबसे प्रथम होनेवाली **पित्रे**=आनेवाली सन्तानों के पिता के लिए **सावीः**=सब-कुछ प्रेरित किया है। **अस्मै वर्ष्माणम्**=इसके लिए देह को, तथा **अस्मै**=इसके लिए **वरिमाणम्**=पुत्र-पौत्रादि लक्षणयुक्त उरुत्व (विस्तार) को आपने ही प्राप्त कराया है। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु के कुछ मानसपुत्र होते हैं (यद्भावा मानसा जाताः) इन्हें प्रभु ही शरीर प्राप्त कराते हैं, और सन्तानों को जन्म देने की शक्ति भी प्राप्त कराते हैं (एषां लोक इमाः प्रजाः)। २. **अथ**=अब **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए

हे **सवितः**=सबके प्रेरक प्रभो! **वार्याणि**=वरणीय वस्तुओं को तथा **भूरि पश्वः**=भरण के साधनभूत बहुत पशुओं को **दिवःदिवः**=प्रतिदिन **आसुव**=प्रेरित कीजिए।

**भावार्थ**—प्रभु ही सृष्टि के प्रारम्भ में प्रथम मनुष्य को शरीर व सन्तान-जनन शक्ति प्रदान कराते हैं। वर्त्तमान में भी ये प्रभु हमें सदा वरणीय वस्तुओं व भरण के साधनभूत बहुत पशुओं को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**जगती**॥

## दानं, दक्षं, आयूंषि

**दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद्रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि।**
**पिबात्सोमं ममदद्देनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि॥ ४॥**

१. **दमूनाः**=(दानमनाः—नि०) सब अभिलषित पदार्थों को देनेवाला, **देवः**=प्रकाशमय, **सविता**= उत्पादक व प्रेरक, **वरेण्यः**=वरण करने योग्य प्रभु **पितृभ्यः**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों के लिए **रत्नम्**=रमणीय धनों को, **दक्षम्**=बल को तथा **आयूंषि**=दीर्घजीवन को **दधत्**=धारण करता है। २. **अस्य धर्मणि**=इस प्रभु के निर्दिष्ट धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त जीव **सोमं पिबात्**= सोम का शरीर में ही पान करता है, सोम का रक्षण करता है। यह रक्षित सोम **एनं ममदत्**=इसे आनन्दित करता है। यह सोमरक्षक पुरुष **इष्टे**=यज्ञों में **परिज्मा चित्**=परितः गन्ता होता हुआ, यज्ञमय जीवनवाला बनता हुआ **एनं क्रमते**=इस प्रभु को प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—प्रभु 'दमूना, देव, सविता, वरेण्य' हैं, वे रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों के लिए 'रमणीय धन, बल व दीर्घजीवन' प्राप्त कराते हैं। प्रभु-निर्दिष्ट धर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति (क) सोमरक्षण करता है, यह रक्षित सोम इसे आनन्दित करता है, (ख) यज्ञों में विचरण करता हुआ यह व्यक्ति प्रभु को प्राप्त करता है।

प्रभु-निर्दिष्ट धर्मों में दृढता से चलता हुआ यह सोमरक्षण व यज्ञशीलता से अपने जीवन का उत्तम परिपाक करता है, अतः 'भृगु' कहलाता है। अगले तीन सूक्तों का ऋषि भृगु ही है।

## १५. [ पञ्चदशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**सविता**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सत्यसवां सुचित्रां सहस्त्रधारां 'सुमतिम्' ( वृणे, दुहे )

**तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम्।**
**यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनां सहस्त्रधारां महिषो भगाय॥ १॥**

१. **सवितः**=हे सबके प्रेरक प्रभो! आपकी **ताम्**=उस **सत्यसवाम्**=सत्य की प्रेरणा देनेवाली, **सुचित्राम्**= सुष्ठु पूजनीय व द्रष्टव्य (उत्तम ज्ञान देनेवाली) **विश्ववाराम्**=सबसे वरण के योग्य **सुमतिम्**=शोभन बुद्धि को **अहं आवृणे**=मैं आभिमुख्येन वरता हूँ—प्रार्थित करता हूँ। २. मैं चाहता हूँ **अस्य**=इस सविता की उस सुमति को **याम्**=जिस **सहस्त्रधाराम्**=सहस्त्रों प्रकार से धारण करने व सहस्त्रों धाराओंवाली, **प्रपीनाम्**=प्रकृष्ट आप्यायन-(वर्धन)-वाली बुद्धि को **कण्वः**=मेधावी **महिषः**=प्रभुपूजाप्रवृत्त उपासक **भगाय**=ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए **अदुहत्**=अपने में प्रपूरित करता है।

**भावार्थ**—हम मेधावी व प्रभु के उपासक बनकर उस प्रेरक प्रभु की सुमति का अपने में प्रपूरण करें। यही हमें सत्य की प्रेरणा देगी, हममें ज्ञान का वर्धन करेगी, हमारा धारण व वर्धन करेगी। ऐसा होने पर ही हम वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे।

## १६. [ षोडशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### वर्धय, ज्योतय

**बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय।**
**संशितं चित्सन्तरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥**

१. हे **बृहस्पते**=(ब्रह्मणस्पते) ज्ञान के स्वामिन्! **सवितः**=सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभो! **एनम्**=इस अपने उपासक को **वर्धय**=आप बढ़ाइए। **एनम्**=उसे **महते सौभगाय**=महान् सौभाग्य की प्राप्ति के लिए **ज्योतय**=ज्योतिर्मय जीवनवाला कीजिए। २. **संशितं चित्**=खूब तीव्र बुद्धिवाले इसे **सन्तरम्**=सम्यक् **संशिशाधि**=तीव्र बुद्धिवाला कीजिए। **विश्वेदेवाः**='माता, पिता, आचार्य' आदि सब देव **एनं अनुमदन्तु**=इसे देखकर प्रसन्न हों, 'इसका जीवन अच्छा बना है', ऐसा ही कहें।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हमारी शक्तियों का वर्धन हो, ज्ञानज्योतियों का दीपन हो और महान् सौभाग्य प्राप्त हो। हमारी बुद्धि को प्रभु खूब ही तीव्र करें। सब देव यही कहें कि 'इसका जीवन अच्छा बना है'।

## १७. [ सप्तदशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**धात्रादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाऽऽर्षीगायत्री** ॥

### रयि

**धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥**

१. **धाता**=विश्व का धारक देव **नः**=हमारे लिए **रयिं दधातु**=धन को धारण करे। वे प्रभु **ईशानः**=सर्वार्थसाधन समर्थ हैं, **जगतस्पतिः**=सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। **सः**=वे **नः**=हमें **पूर्णेन**=आप्यायित, समृद्ध, धन से **यच्छतु**=(नियच्छतु) युक्त करें (योजयतु)।

**भावार्थ**—धारक प्रभु की कृपा से हमें वह धन प्राप्त हो जो सब शक्तियों का पूरण करनेवाला बने।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**धात्रादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### सुमति

**धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्।**
**वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २ ॥**

१. **धाता**=सबका विधारक देव, **दाशुषे**=हवि देनेवाले यजमान के लिए **प्राचीम्**=प्रकृष्ट गमनवाली, उत्तम मार्ग पर ले-चलनेवाली, **जीवातुम्**=जीवनकारिणी, जीवन की औषधभूत **अक्षिताम्**=अनुपक्षीण, क्षीण न होने देनेवाली सम्पत्ति को **दधातु**=हमारे लिए धारण करे। २. **वयम्**=हम **विश्वराधसः**=सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले **देवस्य**=प्रकाशमय प्रभु की **सुमतिम्**=कल्याणी मति को **धीमहि**=धारण करते हैं।

**भावार्थ**—गतमन्त्र से यहाँ प्रथम पाद में 'रयिम्' शब्द का अनुवर्तन है। प्रभु हमें सम्पत्ति दें, जोकि हमारी अग्रगति की साधक हों, जीवन की रक्षक हों तथा हमें क्षीण न होने दें। साथ ही हम प्रभु की सुमति का भी धारण करे, ताकि यह सम्पत्ति हमें विलास की ओर न ले-जाए।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**धात्रादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## विश्वा वार्या+अमृतम्

**धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे।**
**तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वेदेवा अदितिः सजोषाः॥ ३॥**

१. **धाता**=सबका धारक **देवः**=दिव्यगुणयुक्त, प्रकाशमय प्रभु इस **प्रजाकामाय**=उत्तम सन्तानों की कामनावाले, **दाशुषे**=हवि देनेवाले यज्ञशील पुरुष के लिए **दुरोणे**=गृह में **विश्वा**=सब **वार्या**=वरणीय वस्तुओं को **दधातु**=धारण करे। सन्तानों के निर्माण के लिए किन्ही आवश्यक साधनों की इसे कमी न रहे। २. **तस्मै**=उस प्रजाकाम दाश्वान् के लिए **देवाः**=वायु, जल आदि देव **अमृतम्**=नीरोगता को **संव्ययन्तु**=संवृत करें, प्राप्त कराएँ (**संवृण्वन्तु**=प्रयच्छन्तु)। **विश्वे**=सब **देवाः**='माता-पिता, आचार्य, अतिथि' आदि देव तथा **अदितिः**=यह अदीना देवमाता वेदवाणी **सजोषाः**=समानरूप से प्रीयमाण होते हुए—प्रसन्न होते हुए इसे अमृतत्व (विषयों के पीछे न मरने की वृत्ति को) प्राप्त करानेवाले हों।

**भावार्थ**—घर में हमें आवश्यक साधनों की कमी न हो, हम सन्तानों का उत्तम निर्माण कर सकें। जल, वायु आदि देवों की अनुकूलता हमें नीरोगता प्राप्त कराए तथा माता-पिता, आचार्य आदि का सम्पर्क और वेदाध्ययन हमें विषयासक्ति से बचाये।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**धात्रादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## यज्ञमय जीवन तथा यज्ञ का साधनभूत धन

**धाता रातिः सविता इदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः।**
**त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु॥ ४॥**

१. **धाता**=सबका धारक, **रातिः**=सब कल्याणों का दाता, **सविता**=सर्वोत्पादक व सर्वप्रेरक, **प्रजापतिः**=प्रजाओं का पालक, **निधिपतिः**=वेदज्ञान का रक्षिता (निधीयन्ते पुरुषार्था येषु) **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **नः**=हमारी **इदं हविः जुषन्ताम्**=इस हवि का प्रीतिपूर्वक सेवन करें। प्रभुकृपा से हम हविरूप जीवनवाले बनें। २. वह **त्वष्टा**=रूपों का निर्माता **विष्णुः**=सर्वव्यापक प्रभु **प्रजया संरराणः**=हम प्रजाओं के साथ रमण करता हुआ **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **द्रविणम्**=यज्ञ के साधनभूत धन को **दधातु**=धारण करे, दे। परमपिता प्रभु की कृपा से हम प्रजाओं को यज्ञात्मक कर्मों के लिए धन की कमी न रहे।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हम यज्ञमय जीवनवाले बनें और इन यज्ञों के लिए हमें आवश्यक धन की कमी न रहे।

इस यज्ञमय जीवन में स्थिरता से चलनेवाला 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है। यज्ञों से होनेवाली वृष्टि का इसमें प्रतिपादन है—

## १८. [ अष्टादशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**पृथिवी, पर्जन्यः** ॥ छन्दः—**चतुष्पाद्धुरिगुष्णिक्** ॥

## यज्ञमय जीवन व वृष्टि

**प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः।**
**उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम्॥ १॥**

१. हे **पृथिवि**=भूमे! तू **प्र नभस्व**=(नभ हिसांयाम्) हल आदि साधनों से अच्छी प्रकार खण्डित हो, और हे **धातः**=धारक प्रभो! आप **ईशानः**=सर्वकर्मसामर्थ्यवाले होते हुए **इदं दिव्यं**

**नभः**=इस अन्तरिक्षस्थ मेघ को **भिन्द्धि**=विदीर्ण कीजिए और **नः**=हमारे पोषण के लिए **दिव्यस्य उदनः**=अन्तरिक्षस्थ दिव्यगुणयुक्त जल के **दृतिम्**=बड़े भारी कुप्परूप मेघ को **विष्य**=नाना दिशाओं से काट डालिए।

**भावार्थ**—पृथिवी पर हम सम्यक् हल आदि चलाएँ और अन्तरिक्ष से सम्यक् वृष्टि होकर यह वृष्टि अन्न का उत्पादन करनेवाली हो। जीवन के यज्ञमय होने पर ऐसा होता ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पृथिवी, पर्जन्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सोमयाग और भद्र-प्राप्ति

**न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।**
**आपश्चिदस्मै घृतमित्क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित्तत्र भद्रम्॥ २॥**

१. **घ्रन्**=ग्रीष्म (गरमी) **न ततापः**=सन्ताप से अन्न को बाधित नहीं करता। **हिमः**=शीत भी **न जघान**=इन अन्नों को नष्ट करनेवाला नहीं होता। **जीरदानुः**=जीवन देनेवाली **पृथिवी**=यह पृथिवी **प्रनभताम्**=सम्यक्तया हल आदि द्वारा खण्डित की जाए। २. **अस्मै**=इस यजमान के लिए **आपः चित्**=जल निश्चय से **घृतं इत् क्षरन्ति**=घृत ही बरसाते हैं। वृष्टि से गोसमृद्धि होकर घृत की कमी नहीं रहती। **यत्र सोमः**=जहाँ सोमयाग होते रहते हैं **तत्र**=वहाँ **सदम् इत्**=सदा ही **भद्रम्**=कल्याण होता है। वहाँ वृष्टि होकर अन्न की कमी नहीं रहती और इसप्रकार अनिष्टनिवृत्ति होकर इष्ट-प्राप्ति होती है।

**भावार्थ**—सर्वत्र सोमयागों के होने पर वृष्टि ठीक प्रकार होती है, सर्दी व गर्मी का प्रकोप नहीं होता। ठीक से वृष्टि होकर गोसमृद्धि द्वारा घृतवृद्धि होती है।

इस उत्तम स्थिति में उन्नति करता हुआ व्यक्ति ब्रह्मा (बढ़ा हुआ) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

# १९. [ एकोनविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**प्रजापतिः, धाता**॥ छन्दः—**जगती**॥

## संज्ञान-साम्मनस्य—समानोद्देश्यता

**प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः।**
**संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु॥ १॥**

१. **प्रजापतिः**=प्रजाओं का स्रष्टा व पालयिता वह देव **इमाः प्रजाः**=इन पुत्र आदि प्रजाओं को **जनयतु**=जन्म दे। प्रभुकृपा से मुझे सन्तान प्राप्त हों। **धाता**=पोषकदेव **सुमनस्यमानः**=सौमनस्य को प्राप्त हुआ-हुआ **दधातु**=उनका पोषण करे। मेरे प्रति प्रीतिवाला प्रभु मेरी सन्तानों का पोषण करे। २. वे प्रजाएँ **संजानानाः**=समान ज्ञानवाली होती हुई, कार्यों के विषय में परस्पर ऐकमत्य को प्राप्त हुई-हुई, **संमनसः**=संगत मनवाली, परस्पर अविरोधी कार्यों का चिन्तन करनेवाली, **सयोनयः**=समान कारणवाली, एक उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य करनेवाली जिस प्रकार हों वैसे **पुष्टपतिः**=सब पोषणों का पति प्रभु **पुष्टम्**=प्रजाविषयक पोषण को **मयि दधातु**=मुझमें धारण करे।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हमें सन्तानें प्राप्त हों, हम उनका सम्यक् धारण कर पाएँ। वे सन्तानें संज्ञानवाली, साम्मनस्यवाली तथा समान उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य करनेवाली हों। प्रभु हमारे लिए इसप्रकार की सन्तानों का पोषण करें।

आत्मनिरीक्षण द्वारा (अथ अर्वाङ्) अपनी कमियों को दूर करते हुए ही हम घरों को उत्तम

बना सकते हैं। इन घरों में परस्पर अनुकूल मति (अनुमति) का होना आवश्यक है। अगले सूक्त के ऋषि व देवता ये अथर्वा और अनुमति ही हैं—

## २०. [ विंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### अनुमति

**अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम॥ १॥**

१. **अनुमतिः**=अनुकूल बुद्धि, उत्तम कर्मों में अनुज्ञा देनेवाली बुद्धि, **अद्य**=अब **नः**=हमारे **देवेषु यज्ञम्**=देवों के विषय में पूजा, संगतिकरण तथा समर्पण (दान) को **अनुमन्यताम्**=अनुमत (अनुज्ञात) करे। हमारी बुद्धि हमें देवपूजन व देवसंग में प्रेरित करे। २. देवसंग से उत्तम बुद्धिवाले होकर हम यज्ञों में प्रवृत्त हों **च**=और **मम दाशुषे**=मुझ दाश्वान् के लिए, हवि देनेवाले मेरे लिए, **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **हव्यवाहनः**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला **भवताम्**=हो। हम यज्ञशील बनें और हव्य पदार्थों को प्राप्त करने के पात्र हों।

**भावार्थ**—हमारी अनुमति हमें देवपूजन व देवसंग के लिए प्रेरित करे। इसप्रकार यज्ञशील बनते हुए हम प्रभुकृपा से हव्य पदार्थों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### अनुमति, उत्तम कर्म, उत्तम सन्तान

**अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः॥ २॥**

१. हे **अनुमते**=अनुकूल बुद्धे! **त्वम्**=तू **अनुमंससे इत्**=हमें शुभकर्मों के अनुकूल ही मति प्राप्त कराना **च**=और इसप्रकार **नः शं कृधि**=हमारे जीवन को शान्तिवाला बनाना। २. तू **आहुतम्**=अग्नि में आहुत किये हुए **हव्यम्**=हव्य का **जुषस्व**=सेवन कर, यज्ञशील बन। हे **देवि**=द्योतमाने अनुमते! तू हमें कर्मानुकूल उत्तम बुद्धि प्राप्त कराके तथा यज्ञशील बनाकर **नः**=हमारे लिए **प्रजां ररास्व**=प्रशस्त प्रजा को प्राप्त करा, उत्तम वातावरण में हमारी सन्तानें भी उत्तम हों।

**भावार्थ**—अनुमति को प्राप्त करके हम सत्कर्मानुकूल बुद्धिवाले, शान्त व यज्ञशील हों और इसप्रकार उत्तम वातावरणवाले घर में उत्तम सन्तानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### प्रशस्त प्रजावाली, अक्षीयमाण 'सम्पत्ति'

**अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम्।**
**तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम॥ ३॥**

१. **अनुमन्यमानः**=सदा सत्कर्मानुकूल बुद्धि को प्राप्त कराता हुआ अनुमन्ता देव हमारे लिए **प्रजावन्तम्**=प्रशस्त सन्तानोंवाली, **अक्षीयमाणम्**=नष्ट न होती हुई, क्षीणता का कारण न बनती हुई, **रयिम्**=सम्पत्ति को **अनुमन्यताम्**=अनुज्ञात करें, प्राप्त कराएँ। २. **वयम्**=हम **तस्य**=उस अनुमन्ता देव के **हेडसि**=क्रोध में **मा अपि भूम**=मत ही हों। हम प्रभु के क्रोध के पात्र न बनें। **अस्य**=इस अनुमन्ता प्रभु की **सुमृडीके**=शोभन सुखकारिणी **सुमतौ**=अनुग्रहात्मक शोभनबुद्धि में **स्याम**=हों।

**भावार्थ**—प्रभु हमें प्रशस्त प्रजावाली अक्षीयमाण सम्पत्ति दें। हम प्रभु के क्रोधपात्र न हों और शोभन सुखकारिणी सुमति को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

## सुप्रणीते,विश्ववारे, सुभगे 'अनुमते'

**यत्ते॒ नाम॑ सु॒हव॑ं सुप्रणी॒तेऽनु॑मते॒ अनु॑मतं सु॒दानु॑।**
**तेना॑ नो य॒ज्ञं पि॑पृहि विश्ववारे र॒यिं नो॑ धेहि सुभगे सुवी॒र्म्॥ ४॥**

१. हे **सुप्रणीते**=शुभ कार्यों की ओर ले-चलनेवाली **अनुमते**=अनुकूल बुद्धे! **यत् ते नाम**=जो तेरा 'अनुमति' यह नाम है, वह **सुहवम्**=उत्तमता से पुकारने योग्य है, **अनुमतम्**=अभिमत है, इष्ट है और **सुदानु**=शोभन दानोंवाला—अभिमत फलप्रदायक है। २. **तेन**=अपने उस नाम से, हे **विश्ववारे**=सबसे वरणीय व **सुभगे**=शोभनभाग्ययुक्त अनुमते! **नः**=हमारे लिए **यज्ञं पिपृहि**=यज्ञ को पूरित कर और **नः**=हमारे लिए **सुवीरं रयिं धेहि**=उत्तम सन्तानोंवाले धन को धारण कर।

**भावार्थ**—अनुमति हमें उत्तम मार्ग पर ले-चलनेवाली है, यह सबसे वरणीय है, सौभाग्य को देनेवाली है। यह हमें यज्ञशील, उत्तम सन्तानोंवाला व समृद्ध बनाये।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**जगती**॥

## सुक्षेत्रतायै—सुवीरतायै

**एमं य॒ज्ञमनु॑मतिर्जगाम सुक्षे॒त्रता॑यै सुवी॒रता॑यै सुजा॑तम्।**
**भ॒द्रा ह्य॑ ऽस्या॒ः प्रम॑तिर्ब॒भूव॒ सेमं य॒ज्ञम॑वतु दे॒वगो॑पा॥ ५॥**

१. **अनुमतिः**=अनुकूल बुद्धि **इमम्**=इस **सुजातम्**=मन्त्रों व द्रव्यों से सुष्ठु निष्पन्न **यज्ञम्**=यज्ञ को **आजगाम**=प्राप्त होती है। अनुमति के होने पर हम इन यज्ञों को सम्यक्तया करते हैं। परिणामतः **सुक्षेत्रतायै**=ये यज्ञ हमारे क्षेत्रों की उत्तमता के लिए होते हैं और **सुवीरतायै**=उत्तम वीर सन्तानों के लिए होते हैं। २. **अस्याः**=इस अनुमति की **प्रमतिः**=प्रकृष्ट बुद्धि **हि**=निश्चय से **भद्रा बभूव**=कल्याणकारिणी होती है। **सा**=वह **देवगोपा**=दिव्य भावों का रक्षण करनेवाली बुद्धि **इमं यज्ञं अवतु**=इस यज्ञ का रक्षण करे। अनुमति हमें सदा यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित किये रक्खे।

**भावार्थ**—अनुमति हमें सम्यक् सम्पन्न किये जानेवाले यज्ञों में प्रवृत्त करे, उनसे हमारे क्षेत्र उत्तम हों, हमें उत्तम सन्तान प्राप्त हो। यह अनुमति दिव्य भावों का रक्षण करती हुई हमें यज्ञ में प्रवृत्त करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अनुमतिः**॥ छन्दः—**अतिशाक्वरगर्भाजगती**॥

## सबका ध्यान

**अनु॑मति॒ः सर्व॑मि॒दं ब॑भूव॒ यत्ति॑ष्ठति॒ चर॑ति॒ यदु॒ च॒ विश्व॒मेज॑ति।**
**तस्या॑स्ते देवि सुम॒तौ स्या॒मानु॑मते॒ अनु॒ हि मं॑स॒से नः॥ ६॥**

१. **अनुमतिः**=यह अनुमति देवी **इदं सर्वं बभूव**=इस सबको व्याप्त करती है, **यत्**=जो **तिष्ठति**=स्थावर वृक्षगुल्मादिरूप में स्थित है, **चरति**=जो अबुद्धिपूर्वक चेष्टा कर रहा है, **च**=और **यत्**=जो **विश्वम्**=संसार **उ**=निश्चय से **एजति**=बुद्धिपूर्वक चेष्टा कर रहा है, अनुमति 'वृक्षों, सूर्य आदि गतिमान् पिण्डों व सब प्राणियों' का ध्यान करती है। २. हे **देवि**=प्रकाशमयि **अनुमते**=अनुमते! हम **तस्याः ते**=उस तेरी **सुमतौ स्याम**=कल्याणी मति में हों। तू **हि**=निश्चय से **नः**=हमें **अनुमंससे**=उत्तम कर्मों की अनुज्ञा देती है। तेरे कारण हम सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

**भावार्थ**—अनुमति 'स्थावर, जंगम जगत् का तथा सब प्राणियों का' ध्यान करती है। यह हमें सदा यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करती है।

इसप्रकार अनुमति द्वारा उत्तम कर्मों को करता हुआ यह अथर्वा 'ब्रह्मा' (बढ़ा हुआ) बनता है। अगले दो सूक्त इसी ऋषि के हैं—

## २१. [ एकविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**शक्वरीविराड्गर्भाजगती** ॥

### एकः,विभूः, जनानाम् अतिथिः

**समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्।**
**स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्तं वर्तनिरनु वावृत एकमित्पुरु ॥ १ ॥**

१. **विश्वे**=सब बन्धु मिलकर **वचसा**=मन्त्ररूप स्तोत्रों से **दिवः पतिं**=प्रकाश के (सूर्य के) स्वामी प्रभु को **समेत**=प्राप्त होओ। वे प्रभु **एकः**=अद्वितीय हैं, **विभूः**=सर्वव्यापक हैं, **जनानाम् अतिथिः**=जन्मवाले प्राणियों के प्रति निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं। २. **सः**=वे प्रभु **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं, **नूतनम् आविवासत्**=इस नये-नये संसार को व्याप्त कर रहे हैं (**'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'**)। **तम्**=उस **एकम्**=अद्वितीय प्रभु को ही **पुरु**=नाना प्रकार के **वर्तनिः**=मार्ग **अनुवावृते**=पहुँचते हैं।

**भावार्थ**—सब मिलकर प्रभु का उपासन करो। प्रभु अद्वितीय हैं, सबके स्वामी हैं, लोगों को सतत प्राप्त होनेवाले हैं। वे प्रभु पालन व पूरण करनेवाले होते हुए सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं। सभी मार्ग अन्ततः प्रभु की ओर ले-जानेवाले हैं। (विलास के मार्ग भी कष्ट का अनुभव प्राप्त कराके हमारे जीवन की दिशा को बदल देते है और हमें प्रभु की ओर ले-चलते हैं)।

## २२. [ द्वाविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः, ( ब्रध्नः )** ॥ छन्दः—**द्विपदाविराड्गायत्री ( एकावसाना )** ॥

### कवीनां मतिः

**अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥**

१. **अयम्**=ये प्रभु **सहस्रम्**=सहस्रसंवत्सर कालपर्यन्त **दृशे**=दर्शन के लिए, ज्ञान-प्रदान के लिए **नः आ** (भवतु)=हमें प्राप्त हों। हम सदा प्रभु से ज्ञान प्राप्त करनेवाले बनें और दीर्घजीवी हों। वे प्रभु **कवीनां मतिः**=ज्ञानी पुरुषों से माननीय हैं। **विधर्मणि**=विविध धर्मों में वे हमारे **ज्योतिः**=प्रकाश हैं, मार्गदर्शक हैं।

**भावार्थ**—हम प्रभु से प्रकाश प्राप्त करते हुए दीर्घकाल तक जीवन-धारण करें। वे प्रभु ज्ञानियों से मननीय हैं, और विविध धर्मों में मार्गदर्शक हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः ( ब्रध्नः )** ॥ छन्दः—**त्रिपदाऽनुष्टुप्** ॥

### कैसी उषाएँ

**ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्।**
**अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥ २ ॥**

१. **ब्रध्नः**=सबको अपने-अपने कर्मों में बाँधनेवाला सूर्य **उषसः समैरयन् ( त् )**=उषाओं को प्रेरित करे। उन उषाओं को जोकि **समीचीः**=सम्यक् गतिवाली हैं, जिनमें हम अपने नित्य कर्मों को ठीक प्रकार प्रारम्भ कर देते हैं, **अरेपसः**=जो पापशून्य हैं, जिनमें प्रभुस्मरण से हम पापवृत्ति को विनष्ट करते हैं। **सचेतसः**=ज्ञान से युक्त हैं, जिनमें हम स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करते हैं। २. जो उषाएँ **स्वसरे**=दिन में (अहर्नामैतत्) **मन्युमत्तमाः**=अतिशयेन दीप्तिवाली हैं और जो **गोः चिते**=ज्ञान की वाणी के चयन के लिए हैं। जिन उषाओं में हम खूब ही ज्ञान

का संचय करते हैं।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हमारे लिए उन उषाओं का उदय हो, जिनमें हम क्रियाशील, निष्पाप, ज्ञानवाले व वेदवाणी का चयन करनेवाले बनते हैं।

## २३. [ त्रयोविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### दौःष्वप्न्य आदि का दूरीकरण

**दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्व मराय्यः ।**
**दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥**

१. अपने जीवन को नियमित करनेवाला 'यम' इस सूक्त का ऋषि है। अथर्व ४.१७.५ पर इस मन्त्र की व्याख्या हो चुकी है। नियमित जीवन से दौःष्वप्न्य आदि को दूर करके जीवन को उन्नत करता हुआ यह 'ब्रह्मा' बनता है—

## २४. [ चतुर्विंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### इन्द्र+अग्नि

**यन्न इन्द्रो अखनद्यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत्स्वर्काः ।**
**तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥**

१. **नः**=हमारे लिए **यत्**=जिस धन को **इन्द्रः अखनत्**=इन्द्र खोदता है, अर्थात् जिस गुप्त धन को हमारे लिए इन्द्र प्राप्त कराता है, **यत् अग्निः**=जिसे अग्नि तथा **विश्वेदेवाः**=सब देव प्राप्त कराते हैं। **यत्**=जिसे **मरुतः स्वर्काः**=(सु अर्च्) उत्तमता से पूजन करनेवाले प्राण प्राप्त कराते हैं, **तत्**=उस धन को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **सविता**=सर्वप्रेरक **सत्यधर्मा**=सत्य का धारण करनेवाला **प्रजापतिः**=प्रजाओं का रक्षक **अनुमतिः**=अनुकूल मति को प्राप्त करानेवाला प्रभु **नियच्छात्**=प्राप्त कराए। २. जितेन्द्रिय (इन्द्र) आगे बढ़ने की भावनावाले (अग्नि), दिव्य गुण-सम्पन्न (विश्वेदेवा) तथा प्राणसाधना के साथ प्रभु की अर्चना में प्रवृत्त होकर (स्वर्काः मरुतः) हम जिस बल व ज्ञान के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं, वह सब हमें प्रभु ही प्राप्त कराते हैं। उस समय हम प्रभु-प्रेरणा को सुनते हुए (सविता) सत्य को धारण करनेवाले बनते हैं (सत्यधर्मा), और प्रजाओं के रक्षक बनकर शास्त्रानुकूल कर्मों के करने की प्रवृत्तिवाले होते हैं।

**भावार्थ**—हम जितेन्द्रिय, आगे बढ़नेवाली वृत्तिवाले, दिव्यगुणों को धारण करनेवाले व प्राणसाधना के साथ प्रभु-अर्चन में प्रवृत्त होनेवाले हों। हमें वे प्रेरक, सत्य के धारक, प्रजाओं के रक्षक, अनुकूल मतिदाता प्रभु उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराएँगे।

उल्लिखित मन्त्र में निर्दिष्ट मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति ही 'मेधातिथि' है, बुद्धि के साथ चलनेवाला। यह मेधातिथि अगले पाँच सूक्तों का ऋषि है—

## २५. [ पञ्चविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### विष्णु+वरुण

**ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यै वीरतमा शविष्ठा ।**
**यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥**

१. 'विष्णु' (विष् व्याप्तौ) व्यापकता का प्रतीक है तथा 'वरुण' द्वेषनिवारण का। हमें चाहिए कि हम (व्यापक) उदार हृदयवाले व निर्द्वेष बनें। प्रभु में ये गुण निरपेक्षरूप में है, अतः प्रभु 'विष्णु' हैं 'वरुण' हैं। **ययोः**=जिन विष्णु और वरुण के **ओजसा**=बल से **रजांसि स्कभिता**=ये सब लोक थमे हुए हैं। **यौ**=जो दोनों **वीर्यैः**=वीर्यों से **वीरतमा**=सर्वाधिक वीर हैं, **शविष्ठा**=सर्वाधिक बली हैं। २. **यौ**=जो दोनों **पत्येते**=ऐश्वर्य व सामर्थ्य को प्राप्त हैं। **सहोभिः**=अपने बलों के कारण **अप्रतीतौ**=शत्रुओं से अनाक्रान्त हैं। उन **विष्णुं वरुणम्**=विष्णु और वरुण को **पूर्वहूतिः अगन्**=हमारी सर्वप्रथम पुकार प्राप्त हो, हम इन विष्णु और वरुण का ही आराधन करें।

**भावार्थ**—विष्णु व वरुण की आराधना करते हुए हम 'लोकधारक, वीर, बलवान्, ऐश्वर्यशाली व शत्रुओं से अनाक्रान्त बनें।

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**विष्णुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

**धर्मणा+सहोभिः**

**यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः।**
**पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः॥ २॥**

१. **यस्य**=जिस विष्णु व वरुण के **प्रदिशि**=शासन में **यत् इदम्**=जो यह जगत् है वह **विरोचते**= विशिष्टरूप से दीप्त होता है। **च**=और उसी विष्णु व वरुण के शासन में ही **प्र अनति**=प्राणधारण करता है, **च**=और **शचीभिः विचष्टे**=उन्हीं की शक्तियों से विविध कर्मों को करता है। २. अतः **देवस्य**=उस द्योतमान् विष्णु व वरुण के **धर्मणा**=धारक कर्म के हेतु से **च**=तथा **सहोभिः**=शत्रुमर्षक शक्तियों के हेतु से **पुरा**=सर्वप्रथम हमारी **पूर्वहूतिः**=प्रारम्भिक पुकार **विष्णुं वरुणं अगन्**=विष्णु व वरुण को ही प्राप्त होती है। विष्णु व वरुण को पुकारते हुए हम भी 'विष्णु व वरुण' बनते हैं और धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा बलों को प्राप्त करते हैं।

**भावार्थ**—विष्णु व वरुण ही सब जगत् को दीप्त करते हैं, जीवन देते है और विविध कर्मफल प्राप्त कराते हैं। हम भी विष्णु (उदार) बनकर समाज को धारण करनेवाले बनें (धर्मणा) और वरुण (निर्द्वेष) बनकर बलवान् बनें।

## २६. [ षड्विंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**विष्णुः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

**त्रेधा विचक्रमाणः, उरुगायः**

**विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्या ∫ णि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।**
**यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ १॥**

१. मैं **विष्णोः**=उस सर्वव्यापक प्रभु के **वीर्याणि**=वीरतायुक्त कर्मों को **नु कम्**=शीघ्र ही **प्रावोचम्**=प्रकर्षेण कहता हूँ। उस विष्णु के **यः**=जिसने इन **पार्थिवानि रजांसि विममे**=पार्थिव लोकों को बनाया है। अथवा इन पार्थिव लोकों में होनेवाली अग्नि, विद्युत्, सूर्यात्मक ज्योतियों को (रजांसि) बनाया है। २. **यः**=जिस विष्णु ने **उत्तरम्**=उत्कृष्टतर **सधस्थम्**=(सह तिष्ठन्त्यस्मिन् देवाः) प्रभु के साथ मिलकर बैठने के आधारभूत इस स्वर्ग को **अस्कभायत्**=थामा है। वे विष्णु **त्रेधा**=तीन प्रकार से—पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में **विचक्रमाणः**=विशिष्टरूप से गति करते हुए **उरुगायः**=खूब ही गायन के योग्य हैं, अथवा सर्वत्र गमनवाले हैं।

**भावार्थ**—प्रभु के ही सब वीरतापूर्ण कर्म हैं, प्रभु ही सब अग्नि, विद्युत, सूर्यरूप ज्योतियों

को निर्मित करते हैं। स्वर्ग को भी वे ही थामनेवाले हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में गति करते हुए वे प्रभु गायन के योग्य हैं।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

## कुचरः, गिरिष्ठाः

**प्र तद्विष्णु॑ स्तवते वी॒र्या॑ ऽणि मृ॒गो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः।**
**प॒रा॒व॒त॒ आ ज॑गम्या॒त्पर॑स्याः॥ २॥**

१. **तत्**=(सः) वे सर्वव्यापक (तनु विस्तारे) **विष्णुः**=प्रभु **वीर्याणि** (उद्दिश्य)=वीर कर्मों का लक्ष्य करके **प्रस्तवते**=खूब ही स्तुति किये जाते हैं। **मृगः**=वे प्रभु ही अन्वेषणीय हैं (मृग अन्वेषणे), **न भीमः**=वे भयंकर नहीं, प्रेम ही भगवान् का रूप है, पापियों को दण्ड भी वे उनके कल्याण के लिए प्रेम से ही देते हैं। **कुचरः**=सम्पूर्ण पृथिवी पर विचरण करनेवाले है अथवा कहाँ नहीं हैं? (क्वायं न चरतीति वा—नि०) प्रभु तो सर्वत्र हैं। **गिरिष्ठाः**=वेदवाणियों में स्थित हैं, सब वेद प्रभु का ही तो वर्णन कर रहे हैं (सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति)। २. वे प्रभु **परस्याः परावतः**=दूर-से-दूर होते हुए भी **आजगम्यात्**=हमारे हृदय-देश में आने का अनुग्रह करें। दूर-से-दूर विद्यमान उस प्रभु को हम यहाँ हृदय में अनुभव करने का प्रयत्न करें।

**भावार्थ**—प्रभु के वीरतापूर्ण कर्म स्तुति के योग्य हैं। उन प्रभु का ही हम अन्वेषण करें, वे प्रेमरूप हैं, सर्वत्र हैं, सब वेदमन्त्रों में उनका ही प्रतिपादन हो रहा है। दूर-से-दूर होते हुए भी वे प्रभु हमें यहाँ हृदयों में प्राप्त हों।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**षट्पदाविराट्शक्वरी** ॥

## धन+ज्ञान+यज्ञशीलता

**यस्योरुषु॒ त्रिषु॒ वि॒क्रम॑णेष्वधिक्षि॒यन्ति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। उ॒रु विष्णो॒**
**वि क्र॑मस्वो॒रु क्षया॑य नस्कृधि। घृ॒तं घृ॑तयोने पिब॒ प्रप्र॑ य॒ज्ञप॑तिं तिर॥ ३॥**

१. **यस्य**=जिस विष्णु के **उरुषु**=विशाल **त्रिषु विक्रमणेषु**=तीन विक्रमणों—अभिप्रायः पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में **विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति**=सब प्राणियों का निवास है, हे **विष्णो**=सर्वव्यापक प्रभो! वे आप **उरु विक्रमस्व**=इन लोकों में खूब ही विक्रमवाले होओ। कण-कण में आपका विक्रम दृष्टिगोचर हो। २. हे प्रभो! **नः**=हमारे लिए भी **क्षयाय**=निवास के लिए **उरु कृधि**=प्रभूत धनादि प्राप्त कराइए। हे **घृतयोने**=सम्पूर्ण ज्ञानदीप्ति के आधारभूत प्रभो! **घृतं पिब** (पायय)=हमें भी ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराइए और **यज्ञपतिम्**=यज्ञशील व्यक्ति को **प्रप्रतिर**=खूब ही बढ़ानेवाले होओ (तिरतिः वर्धनार्थः)

**भावार्थ**—सम्पूर्ण लोक प्रभु के तीन विक्रमणों में स्थित हैं। प्रभु हमें निवास के लिए आवश्यक धन प्राप्त कराएँ। हमें ज्ञान दें और हम यज्ञशील लोगों का वर्धन करें। (धन के साथ ज्ञान होने पर मनुष्य विलास में न फँसकर, यज्ञशील बनता है)।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

## विष्णु के पांसुर में लोकत्रय की स्थिति

**इ॒दं विष्णु॒र्वि च॑क्रमे त्रे॒धा नि द॑धे प॒दा। समू॑ढमस्य पांसु॒रे॥ ४॥**

१. **विष्णुः**=उस सर्वव्यापक प्रभु ने **इदं विचक्रमे**=इस विश्व को विक्रान्त किया। इसे नाना प्रकार से बनाकर वह इसमें व्याप्त हुआ और **त्रेधा**=तीन प्रकार से **पदा निदधे**=अपने पदों को स्थापित किया। इन लोको को बनाया, इनका धारण किया और अन्त में पुनः अपने में इनका

लय कर लिया। २. **अस्य**=इस व्यापक प्रभु के **पांसुरे**=(पांसुभिः रजोभिः परमाणुभिः युक्ते) प्रकृतिरूप एक चरण में (परमाणुओं से बनी हुई प्रकृति में) **समूढम्**=ये लोक-लोकान्तर धारण किये गये हैं।

**भावार्थ**—प्रभु 'इन लोकों की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय' रूप तीन कदमों को रखते हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एक प्रकृतिरूप चरण में निहित है **(पादोऽस्य विश्वा भूतानि)**।

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**विष्णुः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

## विष्णुः गोपाः अदाभ्यः

**त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पा अदा॑भ्यः। इ॒तो धर्मा॑णि धा॒रय॑न्॥ ५॥**

१. वे **विष्णुः**=व्यापक प्रभु **गोपाः**=गोपायिता (रक्षक) हैं, **अदाभ्यः**=अहिंस्य हैं, किसी से भी अभिभूत करने योग्य नहीं हैं। वे प्रभु **त्रीणि पदा विचक्रमे**=तीन कदमों को रखते हैं, इन लोकों का निर्माण करते हैं, धारण करते हैं और प्रलय करते हैं। २. **इतः**=(इतं गतम् अस्यास्तीति इतः) वे गतिशील प्रभु **धर्माणि**=भूतों को धारण करनेवाले 'पृथिवी,अन्तरिक्ष व द्युलोक' को **धारयन्**=धारण करते हैं। सब गतियों के स्रोत वे प्रभु ही हैं, वे इन सब लोकों को धारण कर रहे हैं।

**भावार्थ**—वे प्रभु व्यापक, रक्षक व अहिंस्य हैं, वे इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करते हैं। सब गतियों के स्रोत होते हुए वे इन लोकों को धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**विष्णुः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

## इन्द्रस्य युज्यः सखा

**विष्णो॒: कर्मा॑णि पश्यत॒ यतो॑ व्र॒तानि॑ पस्प॒शे। इन्द्र॑स्य॒ युज्य॒: सखा॑॥ ६॥**

१. **विष्णोः**=इस व्यापक प्रभु के **कर्माणि पश्यत**=कर्मों को देखो। **यतः**=जिन कर्मों से जीव **व्रतानि**=अपने व्रतों को **पस्पशे**=(स्पश बन्धनस्पर्शनयोः) स्पृष्ट करता है, या व्रतरूप में अपने में बाँधता है। जैसेकि प्रभु दयालु हैं, तो यह उपासक भी दयालु होने का व्रत लेता है। २. वे विष्णु ही **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **युज्यः सखा**=सदा साथ रहनेवाले साथी है।

**भावार्थ**—प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु के अनुसार कर्मों को करने का यत्न करें। प्रभु की तरह ही दयालु बनें। ये प्रभु सदा हमारे साथ रहनेवाले साथी बनते हैं, यदि हम जितेन्द्रिय बनने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**विष्णुः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

## ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः

**तद्विष्णो॒: पर॑मं प॒दं सदा॑ पश्यन्ति सू॒रय॑:। दि॒वी ऽ व॒ चक्षु॒रात॑तम्॥ ७॥**

१. **विष्णोः**=उस व्यापक प्रभु के **तत्**=व्यापक **परमं पदम्**=सर्वोत्कृष्ट स्थान (ज्ञातव्य तत्त्वों) को **सूरयः**=ज्ञानी लोग **सदा**=सदा **पश्यन्ति**=देखते हैं। वह तो **दिवि**=द्युलोक में **आततं चक्षुः इव**=इस चारों ओर विस्तृत प्रकाशवाली सूर्यरूप आँख के समान है। प्रभु '**आदित्यवर्णं**' है, '**ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः**'=ब्रह्म सूर्य के समान एक प्रकाश ही तो है। '**दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः**'॥ हज़ारों सूर्यों की ज्योति के समान प्रभु की ज्योति है।

**भावार्थ**—ज्ञानी लोग विष्णु के परमपद को देखते हैं। ब्रह्म एक सूर्यसम ज्योति हैं, प्रकाशरूप हैं।

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### प्रकाश, विशालता, दृढ़ता

**दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।**
**हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥ ८॥**

१. हे **विष्णो**=व्यापक प्रभो! **दिवः**=द्युलोक से **उत वा**=और **पृथिव्याः**=इस पृथिवीलोक से और हे **विष्णो**=व्यापक प्रभो! इस **महः उरोः अन्तरिक्षात्**=महान् विशाल अन्तरिक्ष से **बहुभिः वसव्यैः**=बहुत वसुओं के (निवास के लिए आवश्यक धनों के) समूहों से **हस्तौ पृणस्व**=अपने हाथों को पूरित कीजिए और उस प्रभूत धनराशि को **दक्षिणात्**=दाहिने हाथ से **उत**=और **सव्यात्**=बायें हाथ से **आप्रयच्छ**=हमारे लिए सभी ओर से प्राप्त कराइए।

**भावार्थ**—प्रभु हमें तीनों लोकों के धनों को प्राप्त करानेवाले हों। प्रभु हमें द्युलोक से 'प्रकाश', अन्तरिक्ष से 'विशालता' व पृथिवी से 'दृढ़ता' प्राप्त कराएँ। हमारा मस्तिष्क दीप्त हो, हृदय विशाल हो तथा शरीर दृढ़ हो।

## २७. [ सप्तविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**इडा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### इडा

**इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।**
**घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी॥ १॥**

१. **इडा**=यह वेदवाणी **एव**=ही **अस्मान् व्रतेन अनुवस्ताम्**=हमें उत्तम कर्मों से आच्छादित करनेवाली हो, अर्थात् इस वेदज्ञान को प्राप्त करके हम सदा उत्तम कर्मों को करनेवाले हों। यह वेदवाणी वह है, **यस्याः**=जिसके कि **पदे**=चरणों में **देवयन्तः**=प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त करने की कामनावाले पुरुष **पुनते**=अपने को सदा पवित्र करते हैं। २. **घृतपदी**=(घृतं पदे यस्याः) जिसके एक-एक शब्द में ज्ञानदीप्ति है, **शक्वरी**=जो हमें शक्तिशाली बनाती है, **सोमपृष्ठा**=(पृक्ष्=to sprinkle) हमारे जीवन में सोम का सेचन करनेवाली है, अर्थात् वेदाभ्यास से वासना-विलय होकर सोम का शरीर में रक्षण होता है, वह **वैश्वदेवी**=सब दिव्य गुणों को जन्म देनेवाली वेदवाणी **यज्ञं उपास्थित**=उस पूजनीय प्रभु के समीप उपस्थित होती है, हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती है। यह वेदवाणी प्रभु का ही तो पूजन करती है (उपतिष्ठते) '**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**'।

**भावार्थ**—यह वेदवाणी हमें उत्तम कर्मों में प्रेरित करती हुई, पवित्र जीवनवाला बनाती है। यह 'ज्ञान, शक्ति व सोम का सेचन' करनेवाली है। सब दिव्यगुणों को प्राप्त कराती हुई यह हमें प्रभु के समीप उपस्थित करती है।

## २८. [ अष्टाविंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मेधातिथिः** ॥ देवता—**वेदः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### वेद+यज्ञ

**वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुनिः स्वस्ति।**
**हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम्॥ १॥**

१. **वेदः स्वस्तिः**=यज्ञों में उच्चरित होता हुआ यह वेद हमारे लिए कल्याणकर हो। **द्रुघणः स्वस्तिः**=(द्रुमः हन्यते अनेन) वृक्ष आदि को काटनेवाला आरा कल्याणकर हो। **परशुः**=तृणादि

काटनेवाला दराँती कल्याणकर हो। **वेदिः**=हवि रखने की आधारभूत वेदि कल्याणकर हो। **परशुः**=लकड़ियों को काटनेवाली कुल्हाड़ी **नः स्वस्ति**=हमारे लिए कल्याणकर हो। २. **यज्ञियाः**=पूजनीय **यज्ञकामाः**=यज्ञों की कामनावाले **ते देवासः**=वे देव **हविः कृतः**=हवि के सम्पादक मेरे **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले हों।

**भावार्थ**—वेद तथा यज्ञ के साधनभूत सब पदार्थ हमारा कल्याण करनेवाले हों। सब पूज्यदेव हवि के सम्पादक मेरे इस यज्ञ का प्रीतिपूर्वक सेवन करें।

## २९. [ एकोनत्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**अग्राविष्णू**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### अग्राविष्णू

**अग्रा॑विष्णू म॒हि तद्वां॑ महि॒त्वं पा॒थो घृ॒तस्य॒ गुह्य॑स्य॒ नाम॑।**
**दमे॑दमे स॒प्त रत्ना॒ दधा॑नौ॒ प्रति॑ वां जि॒ह्वा घृ॒तमा च॑रण्यात्॥ १॥**

१. हे **अग्राविष्णू**=अग्नि तथा विष्णुदेव, आगे बढ़ने की प्रवृत्ति तथा व्यापकता (उदारता) **वाम्**=आपका **तद् महित्वम्**=वह माहात्म्य, **महि**=महान् है, आप **गुह्यस्य**=हृदय-गुहा में स्थित **घृतस्य**=ज्ञानदीप्त प्रभु के **नाम पाथः**=नाम का रक्षण करते हो। 'अग्नि तथा विष्णु' अग्रगति की भावना व उदारता हमें प्रभु का स्मरण कराती है। प्रभुस्मरण ही हमें उन्नत व उदार बनाता है। २. ये अग्नि और विष्णु **दमेदमे**=प्रत्येक शरीररूप गृह में **सप्त रत्ना**='रस, रुधिर, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा, वीर्यरूप' सात रमणीय धनों को **दधानौ**=धारण करते हैं। **वां जिह्वा**=आपकी जिह्वा **घृतम्**=ज्ञानदीप्त प्रभु को **आचरण्यात्**=सदा आभिमुख्येन प्राप्त हो। अग्नि व विष्णु की भावना हमें सदा प्रभु का स्मरण करानेवाली हो।

**भावार्थ**—हम आगे बढ़ने की भावनावाले व उदार वृत्तिवाले बनें। ऐसे बनकर हम सदा प्रभु का स्मरण करें तब हम अपने जीवन में सातों रत्नों को धारण करनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**मेधातिथिः**॥ देवता—**अग्राविष्णू**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### महि प्रियं धाम

**अग्रा॑विष्णू म॒हि धाम॑ प्रि॒यं वां॑ वी॒थो घृ॒तस्य॒ गुह्या॑ जुषा॒णौ।**
**दमे॑दमे सु॒ष्टु॒त्या वा॑वृधा॒नौ प्रति॑ वां जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्यात्॥ २॥**

१. हे **अग्राविष्णू**=अग्नि तथा विष्णु, अर्थात् आगे बढ़ने की प्रवृत्ति तथा उदारता! **वाम्**=आपका **धाम**=तेज **महि**=महत्त्वपूर्ण है तथा **प्रियम्**=प्रीतिकर है। आप **जुषाणौ**=परस्पर प्रीतियुक्त होते हुए—मिलकर हममें निवास करते हुए **घृतस्य**=ज्ञानदीप्त प्रभु के **गुह्या**=हृदय-गुहा में स्थित गूढ़रूपों को **वीथः**=प्राप्त कराते हो, अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हो (प्रजन)। २. **दमेदमे**=प्रत्येक शरीर-गृह में **सुष्टुत्या**=प्रभु के उत्तम स्तवन से **वावृधानौ**=आप खूब ही वृद्धि को प्राप्त हो। प्रभुस्मरण से हममें आगे बढ़ने की भावना व उदारता का वर्धन होता है। हे अग्राविष्णू! **वाम्**=आपकी यह **जिह्वा**=जिह्वा **घृतम्**=ज्ञानदीप्त प्रभु को **प्रति उच्चरण्यात्**=प्रतिदिन उच्चरित करे, प्रभुनाम का ही स्मरण करे।

**भावार्थ**—अग्नि तथा विष्णु (आगे बढ़ने की भावना व उदारता) हमें तेजस्वी बनाती है, प्रभुस्मरण में प्रवृत्त करती है। वस्तुतः प्रभुस्मरण से ही ये वृत्तियाँ विकसित होती हैं।

अग्नि व विष्णु का उपासक '**भृगु**'=तेजस्वी व '**अंगिराः**'=अंग-प्रत्यंग में रसवाला बनता है। यह 'भृग्वंगिराः' ही अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## ३०. [ त्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

### अक्षियुग का सम्यक् अञ्जनयुक्त होना

**स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्।**
**स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत्॥ १॥**

१. **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक—माता व पिता **मे स्वाक्तं** (सु आ अक्तम्)=मेरे अक्षियुग को सम्यक् सर्वतः अञ्जनयुक्त (रञ्जित) करें। **अयं मित्रः**=यह सूर्य **स्वाक्तं अकः**=मेरे अक्षियुग को सम्यक् अञ्जनयुक्त करे। २. इसी प्रकार **ब्रह्मणस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **मे स्वाक्तम्**=मेरे अक्षियुग को सम्यक् रञ्जित करे, तथा **सविता स्वाक्तं करत्**=सबका प्रेरक देव मेरे अक्षियुग को सम्यक् रञ्जित करे।

**भावार्थ**—द्युलोक, पृथिवीलोक, सूर्य तथा ज्ञान के स्वामी प्रेरक प्रभु की कृपा से हमारी आँखे सम्यक् अञ्जनयुक्त बनें, वे ठीक से देखनेवाली हों। हमारा दृष्टिकोण ठीक बना रहे।

## ३१. [ एकत्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

### इन्द्र, शूर, मघवा

**इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व।**
**यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु॥ १॥**

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले, **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **अद्य**=आज **बहुलाभिः**=बहुत **यावत् श्रेष्ठाभिः**=अतिश्रेष्ठ, अधिक-से-अधिक श्रेष्ठ **ऊतिभिः**=रक्षणों द्वारा **जिन्व**=प्रीणित कीजिए। हम आपके रक्षणों से रक्षित होते हुए कभी भी शत्रुओं से आक्रान्त न हों। २. **यः**=जो **नः द्वेष्टि**=हमारे प्रति अप्रीति करता है, **सः**=वह **अधरः पदीष्ट**=अधोमुख होकर गिरे, पराजित हो। **उ**=और **यं द्विष्मः**=जिस एक के प्रति हम सब अप्रीतिवाले होते हैं, **तम्**=उसे **उ**=निश्चय से **प्राणः जहातु**=प्राण छोड़ जाए, वह मृत्यु का शिकार हो।

**भावार्थ**—हम उस 'इन्द्र,शूर,मघवा' प्रभु के रक्षण में रक्षित हुए-हुए शत्रुओं से आक्रान्त न हों। जो हम सबके प्रति द्वेष करता है अतएव सबका अप्रिय बनता है, वह अवनत हो व मृत्यु को प्राप्त हो।

'इन्द्र, शूर व मघवा' प्रभु का स्मरण करते हुए द्वेषशून्य होकर,सब प्रकार से आगे बढ़ते हुए हम 'ब्रह्मा' बनते हैं। अगले दो सूक्तों का ऋषि यह 'ब्रह्मा' है—

## ३२. [ द्वात्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### प्रभु-स्मरण व दीर्घ जीवन

**उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।**
**अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ १॥**

१. **प्रियम्**=सबके इष्ट—प्रीणनकारी, **पनिप्नतम्**=(पन स्तुतौ) स्तूयमान, **युवानम्**=बुराइयों को दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले, **आहुति-वृधम्**=दानों के द्वारा

हमारा समन्तात् वर्धन करनेवाले (वर्धयितारं) उस प्रभु के **उप**=समीप **नमः बिभ्रतः अगन्म**=नमन को धारण करते हुए प्राप्त होते हैं। वे प्रभु **मे आयुः**=मेरे आयुष्य को **दीर्घं कृणोतु**=दीर्घ करें।

**भावार्थ**—प्रभु सबके प्रिय हैं, स्तुति के योग्य हैं, बुराइयों को हमसे पृथक् करनेवाले हैं, दानों के द्वारा हमारा चारों ओर से वर्धन करनेवाले हैं। प्रभु के प्रति नमन वासनाविनाश के द्वारा हमारे दीर्घजीवन को सिद्ध करता है।

## ३३. [ त्रयस्त्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निश्च**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

### प्रजा+धन+दीर्घायु

**सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः।**
**सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ १॥**

१. **मरुतः**=प्राण **मा संसिञ्चन्तु**=मुझे शक्ति से सम्यक् सिक्त करें। प्राणसाधना द्वारा मेरे शरीर में शक्ति का सेचन हो। प्राणसाधना से ही वीर्य की ऊर्ध्वगति सम्भव होती है। इसी प्रकार **पूषा**=अपनी किरणों में सब पोषक तत्त्वों को लिये हुए यह सूर्य मुझे **सं ( सिञ्चतु )**=शक्ति से युक्त करे, **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **सम्**=मुझे शक्ति-सिक्त करे। सूर्यकिरणों में (खुले में) यथासम्भव जीवन-यापन तथा स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी शक्ति की रक्षा करने में सहायक होती है। २. **अयं अग्निः**=यह शरीरस्थ जाठराग्नि (वैश्वानर अग्नि) **मा**=मुझे **संसिञ्चतु**=सम्यक् शक्ति-सिक्त करे और इसप्रकार ये सब **प्रजया च धनेन च**=उत्तम सन्तान व ऐश्वर्य के साथ **मे आयुः**=मेरे आयुष्य को **दीर्घम्**=दीर्घ **कृणोतु**=करें।

**भावार्थ**—हम प्राणसाधना करनेवाले हों, सूर्यकिरणों के सम्पर्क में हमारा निवास हो, हम स्वाध्यायशील बनें, भोजन की मर्यादा से जठराग्नि को सदा दीप्त रक्खें। इससे हमें उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य व दीर्घजीवन प्राप्त होगा।

गतमन्त्र के अनुसार दृढ़ता से मार्ग का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति 'अथर्वा' (न डाँवाडोल) बनता है। अगले ५ सूक्तों का ऋषि 'अथर्वा' ही है—

## ३४. [ चतुस्त्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जातवेदाः**॥ छन्दः—**जगती**॥

### अनागसः अदितये ( स्याम )

**अग्ने जातान्प्र णुदा मे सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व।**
**अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागस्तस्ते वयमदितये स्याम॥ १॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **मे जातान्**=मेरे अन्दर प्रादुर्भूत हुए-हुए **सपत्नान्**=शत्रुओं को **प्रणुद**=परे प्रेरित कीजिए। हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **अ-जातान्**=कुछ-कुछ (अ=ईषत्) प्रकट हो रहे—जिनके प्रादुर्भूत होने की सम्भावना हो रही है, उन्हें भी, **प्रतिनुदस्व**=परे धकेल दीजिए। २. **ये पृतन्यवः**=जो हमारे साथ संग्राम की इच्छावाले शत्रु हैं, उन्हें **अधस्पदं कृणुष्व**=हमारे पाँव तले कर दीजिए, हम उन्हें परास्त करनेवाले हों। **ते वयम्**=वे हम अथवा (तव) आपके उपासक हम **अनागसः**=निष्पाप होकर **अदितये स्याम**=स्वास्थ्य के अखण्डन के लिए (अखण्डितत्वाय), अदीनता के लिए तथा अनभिशस्ति (अहिंसन) के लिए हों।

**भावार्थ**—प्रभुस्मरण हमारे प्रादुर्भूत व प्रादुर्भूत होनेवाले सभी शत्रुओं को दूर करें। हमपर आक्रमण करनेवाले सभी शत्रुओं को हम जीतें। निष्पाप होकर हम 'स्वस्थ, अदीन व अहिंसित' बनें।

## ३५. [ पञ्चत्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जातवेदाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### सौभाग्ययुक्त राष्ट्र

**प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व।**
**इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः॥ १॥**

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **अन्यान् सपत्नान्**=हमारा प्रातिकूल्य करनेवाले हमसे भिन्न इन शत्रुओं को **सहसा प्र सहस्व**=बल से अभिभूत कीजिए अथवा शीघ्र विनष्ट कीजिए। **अजातान्**=कुछ-कुछ प्रादुर्भूत हो रहे इन शत्रुओं को भी **प्रतिनुदस्व**=परे धकेल दीजिए। २. हे प्रभो! आप **इदं राष्ट्रम्**=हमारे इस राष्ट्र को **सौभगाय पिपृहि**=सौभाग्य के लिए पूरित कीजिए। शत्रुशून्य हमारा यह राष्ट्र सौभाग्य-सम्पन्न हो। परोपद्रवकारियों से युक्त राष्ट्र कभी सस्य आदि से अभिवृद्धिवाला नहीं होता। **विश्वेदेवाः**=सब देव **एनम्**=इस शत्रुहनन कर्म के प्रयोक्ता को **अनुमदन्तु**=हर्षित करनेवाले हों।

**भावार्थ**—प्रभु के अनुग्रह से हमारे शत्रु नष्ट हों। हमारा राष्ट्र सौभाग्यपूर्ण हो। सब देव इस शत्रुहन्ता को हर्षित करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जातवेदाः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### पत्नी के रुधिर-स्राव का निरोध

**इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत।**
**तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम्॥ २॥**

१. हे स्त्रि! **इमाः**=ये **याः**=जो **ते**=तेरी **शतं हिराः**=सैकड़ों नाड़ियाँ—गर्भधारण के लिए अन्दर स्थित सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, **ते**=तेरी **तासां सर्वासाम्**=उन सब नाड़ियों के **बिलम्**=छेद को रुधिर-स्राव के कारणभूत विच्छेद को **अश्मना**=पाषाणविशेष से—फिटकरी से **अपि अधाम्**=आच्छादित करता हूँ। विच्छेद को रोककर स्राव को बन्द करता हूँ।

**भावार्थ**—नाड़ी-विच्छेद के कारण स्राव प्रारम्भ होने पर स्वास्थ्य के विकृत होने की आशंका बढ़ती ही जाएगी और गर्भस्थ सन्तान पर भी उसका परिणाम अशुभ होगा। एवं, यह विच्छेद शीघ्रातिशीघ्र चिकित्स्य है ही।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जातवेदाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### अस्वं, अप्रजसम्, अश्मानम्

**परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः।**
**अस्वं[1] त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि॥ ३॥**

१. **ते योनेः परम्**=तेरे घर के पराये, अर्थात् शत्रु को **अवरं कृणोमि**=नीचे करता हूँ, अर्थात् उसे तेरे पादाक्रान्त करता हूँ। **त्वा प्रजा मा अभिभूत्**=तुझे तेरी कोई पुत्री अभिभूत करनेवाली न हो, **उत मा सूनुः**=और न कोई पुत्र अभिभूत करे, अर्थात् सन्तानें तेरी विधेय (आज्ञानुसारिणी) हों। २. मैं **त्वा**=तुझे **अस्वम्**=(असुः प्रज्ञा—नि० ३।९) प्रज्ञावाली व **अप्र-जसम्**=(जसु हिंसायाम्) अहिंसनीय—वासनाओं से अनाक्रमणीय **कृणोमि**=करता हूँ तथा **ते अपिधानम्**=तेरे 'इन्द्रियों, मन,बुद्धि व प्राणों' के आवरणभूत इस शरीर को **अश्मानम्**=पत्थर के समान दृढ़ **कृणोमि**=करता हूँ। तुझे 'बुद्धिमती, पवित्रहृदय व दृढ़शरीर' बनाता हूँ।

**भावार्थ**—हमारे घर शत्रुओं के वशीभूत न हों। हमारे पुत्र-पुत्री सब विधेय=आज्ञाकारी हों।

हम प्रज्ञावाले, वासनाओं से अहिंसित व दृढ़ शरीरवाले बनें।

## ३६. [ षट्त्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अक्षि, मनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### दाम्पत्य-प्रेम

**अक्ष्यौ ∫ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।**
**अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥ १ ॥**

१. पत्नी पति को सम्बोधित करती हुई कामना करती है कि **नौ अक्ष्यौ**=हम दोनों की आँखे **मधुसंकाशे**=मधुसदृश हों। जैसे मधु मधुर व स्निग्ध है, इसी प्रकार हमारी आँखें परस्पर अनुरक्त, मधुर प्रेक्षणवाली तथा अत्यन्त स्निग्ध हों। **नौ**=हम दोनों का **अनीकम्**=मुखमण्डल **समञ्जनम्**=यथावत् विकासवाला, प्रसन्नता को प्रकट करनेवाला (Smiling) हो। २. पत्नी पति से कहती है कि **माम्**=मुझे **हृदि**=हृदय में **अन्तः कृणुष्व**=अन्दर स्थान दे। मैं तेरी हृदयंगमा व प्रिया बनूँ। **नौ**=हम दोनों का **मनः**=मन **इत्**=निश्चय से **सह असति**=समान—एक-जैसा हो।

**भावार्थ**—पति-पत्नी परस्पर मधुर, अनुरक्त आँखों से एक-दूसरे को देखें, उनके चेहरों पर प्रसन्नता झलके। एक-दूसरे को वे अपने हृदय में स्थान दें, उन दोनों का मन साथ-साथ हो।

## ३७. [ सप्तत्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वासः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### मनुजात वस्त्र द्वारा पति का बन्धन

**अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।**
**यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ १ ॥**

१. पत्नी पति से कहती है कि **त्वा**=तुझे **मनु-जातेन**=विचारपूर्वक धारण किये गये **मम वाससा**=अपने इस वस्त्र से **अभिदधामि**=अपने साथ बाँधती हूँ। मैं तुझे इसप्रकार अपने साथ सम्बद्ध करती हूँ कि **यथा**=जिससे **केवलः मम असः**=तू केवल मेरा ही हो, **चन**=और **अन्यासाम्**=औरों का नाम भी **न कीर्तयाः**=उच्चरित न करे।

**भावार्थ**—पत्नी विचारपूर्वक (समझदारी से) वस्त्रों को धारण करती हुई पति की प्रिया बने। पति को प्रसन्न रक्खे, पति का ध्यान कभी पर-स्त्री की ओर न जाए। भद्दे ढंग से धारण किये हुए वस्त्र कभी पति के मन में ग्लानि पैदा कर सकते हैं।

## ३८. [ अष्टात्रिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वनस्पतिः ( आसुरी )** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### प्रतिज्ञारूप औषध

**इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम्।**
**परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥**

१. जिस समय एक पत्नी (वधू) संस्कार के समय सभा में प्रतिज्ञा करती है कि '**स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः**'='वे शत्रुओं का नियमन करनेवाले प्रभु मुझे यहाँ पितृगृह से मुक्त करें, परन्तु मैं पतिगृह से कभी पृथक् न होऊँ' तो यह प्रतिज्ञा एक प्रबल औषध का कार्य करती है और पति को (वर को) पर-स्त्रीपराङ्मुख बनाती है। यह प्रतिज्ञा पति-पत्नी के प्रेम की कमीरूप रोग का औषध बन जाती है। पत्नी कहती है कि मैं **इदं भेषजम्**=इस

प्रतिज्ञारूप औषध को **खनामि**=(खन् to bury) हृदय क्षेत्र में गाड़नेवाली बनाती हूँ। २. यह औषध **मां पश्यम्** (माम् एवं पत्ये प्रदर्शयत्)=पति के लिए केवल मुझे ही दिखानेवाली बनती है, पति मेरे अतिरिक्त अन्य स्त्रियों की ओर नहीं देखता। **अभिरोरुदम्** (रोरुधम्)=पति के अन्य नारी-संसर्ग को रोकती है। **परायतः निवर्तनम्**=अपने से (मुझसे) परे जाते हुए पति के पुनरावर्तन का कारण बनती है और **आयतः प्रतिनन्दनम्**=मेरे प्रति आते हुए पति के आनन्द को उत्पन्न करती है।

**भावार्थ**—पत्नी अपने मन में दृढ़ निश्चय करे कि मुझे पतिगृह से कभी पृथक् नहीं होना। ऐसा करने पर पति कभी पर-स्त्री की ओर दृष्टि न करेगा, वह अन्य नारी-संसर्ग से रुकेगा, घर से दूर होता हुआ घर लौटने की कामनावाला होगा और पत्नी के सम्पर्क में प्रसन्नता का अनुभव करेगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (आसुरी)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## आसुरी

**येना॑ नि॒चक्र॑ आ॑सुरीन्द्रं॑ दे॒वेभ्य॒स्परि॑।**
**तेना॒ नि कु॑र्वे॒ त्वाम॒हं यथा॒ तेऽसा॑नि॒ सुप्रि॑या॥ २॥**

१. पत्नी कहती है कि **आसुरी**=प्राणशक्ति ने **येन**=जिस उपाय से **इन्द्रम्**=एक जितेन्द्रिय पुरुष को **देवेभ्यः परि**=दिव्य गुणों के लिए सब ओर से **निचक्रे**=निश्चय से समर्थ किया, **तेन**=उसी उपाय से **त्वाम्**=तुझे **अहं निकुर्वे**=मैं अपने लिए निश्चय से प्राप्त करती हूँ, **यथा**=जिससे मैं **ते सुप्रिया असानि**=तेरी सुप्रिया होऊँ।

**भावार्थ**—प्राणसाधना द्वारा निर्दोष जीवनवाला बनकर 'इन्द्र' जितेन्द्रिय पुरुष दिव्य गुणों को धारण करता है। इसी प्रकार प्राणसाधना से स्वस्थ व निर्मल मनवाली पत्नी पति के लिए प्रिय बनती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (आसुरी)**॥ छन्दः—**चतुष्पदा उष्णिक्**॥

## सोम-सूर्य-देव

**प्र॒तीची॒ सोम॑मसि प्र॒तीच्यु॒त सूर्य॑म्।**
**प्र॒तीची॒ विश्वा॑न्दे॒वान्तां त्वा॒च्छाव॑दामसि॥ ३॥**

१. हे युवति! तू **सोमं प्रतीची असि**=सोम के प्रति गतिवाली है, सोम को शरीर में सुरक्षित रखनेवाली है, **उत**=और **सूर्यं प्रतीची**=ज्ञानसूर्य के प्रति गतिवाली है। ज्ञानप्राप्ति के प्रति रुचिवाली है। २. सोमरक्षण व ज्ञानरुचिता द्वारा **विश्वान् देवान् प्रतीची**=सब देवों के प्रति गतिवाली है, सब दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाली है **तां त्वां अच्छ**=उस तेरे प्रति **आवदामसि**=आदर के शब्दों को कहते हैं।

**भावार्थ**—उत्तम गृहपत्नी बनने के लिए आवश्यक है कि एक युवती 'अपने अन्दर शक्ति का रक्षण करनेवाली, ज्ञान की रुचिवाली व दिव्यगुणों को धारण करनेवाली' बने।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (आसुरी)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## घर में पत्नी, सभा में पति

**अ॒हं व॑दामि॒ नेत्त्वं स॒भाया॒मह॒ त्वं व॑द।**
**ममेद॑स॒स्त्वं केव॑लो॒ नान्यासां॑ की॒र्तया॑श्च॒न॥ ४॥**

१. एक युवती चाहती है कि घर में वही 'सम्राज्ञी' हो, सभा में पति 'सम्राट्' बने, अतः

वह कहती है कि हे पते! **अहं वदामि**=घर में मैं ही बोलती हूँ, **त्वं न इत्**=आप यहाँ न बोलिए। **अह सभायां त्वं वद**=सभा में तो आप ही बोलिए। (अह विनिग्रहार्थीयः), अर्थात् जब आप मेरे समीप प्राप्त होते हैं तब मैं ही बोलती हूँ, आप तो मदुक्त का अनुवादमात्र ही करते हैं, मेरे प्रतिकूल कभी नहीं कहते। सभा में आपका स्थान है, मैं सभा में नहीं जाती, वहाँ मैं जाती भी हूँ तो शान्त रहती हूँ। २. इसप्रकार **त्वम्**=आप **मम इत् असः**=केवल मेरे ही होओ, **अन्यासां न कीर्तयाः चन**=औरों का नाम भी न लीजिए। आपका झुकाव किसी अन्य युवती के प्रति न हों।

**भावार्थ**—परिवार में यह व्यवस्था हो कि घर में पत्नी, सभा में पति। पति अपनी पत्नी से भिन्न किसी युवती का गुण-कीर्तन करनेवाला न हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (आसुरी)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## वैवाहिक प्रतिज्ञा से पति का पत्नी के प्रति झुकाव

**यदि॒ वासि॑ तिरोज॒नं यदि॑ वा न॒द्य॑ स्तिर॒ः।**
**इ॒यं ह॒ मह्यं॑ त्वामोष॑धिर्ब॒द्ध्वेव॒ न्या॑नयत्॥ ५॥**

१. पत्नी कहती है कि हे पते! **यदि वा**=चाहे आप **तिरोजनं असि**=लोगों से तिरोहित प्रदेश में कहीं हैं, **यदि वा**=अथवा **नद्यः तिरः**=निम्नगा नदियाँ (आवयोर्व्यवधायिकाः) हममें व्यवधान करनेवाली हैं तो भी **ह**=निश्चय से **इयं ओषधिः**=यह **'प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा'** इन शब्दों में की गई प्रतिज्ञारूप ओषधि **त्वाम्**=आपको **बद्ध्वा इव**=मानो बाँधकर **मह्यं नि आनयत्**=मेरे लिए निरन्तर प्राप्त करानेवाली हो। मेरी यह प्रतिज्ञा आपको मेरे प्रति प्रीतिवाला बनाए।

**भावार्थ**—पत्नी की पातिव्रत्य की प्रतिज्ञा पति को पत्नी के प्रति प्रेमोन्मुख करनेवाली होती है।

गत मन्त्रों में वर्णित प्रकार से वर्तनवाले पति-पत्नी ही बुद्धिमान् हैं। वे 'प्रस्कण्व'=मेधावी हैं। अगले सात सूक्तों का ऋषि यह 'प्रस्कण्व' ही है।

## ३९. [ एकोनचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'दिव्य सुपर्ण' वेदज्ञान

**दि॒व्यं सु॑प॒र्णं प॑य॒सं बृ॒हन्त॑मपां॒ गर्भं॑ वृष॒भमोष॑धीनाम्।**
**अ॒भीप॒तो वृ॒ष्ट्या त॒र्पय॑न्त॒मा नो॑ गो॒ष्ठे र॑यि॒ष्ठां स्था॑पयाति॥ १॥**

१. 'सरस्वती' ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता है। पुल्लिंग में यही भाव 'सरस्वान्' शब्द से व्यक्त हो रहा है। वह सरस्वान् प्रभु (७.४०.१) **नः गोष्ठे**=हमारे इस इन्द्रियों के निवास-स्थानभूत देह में (गावः तिष्ठन्ति अस्मिन्) **रयिष्ठाम्**=ज्ञानैश्वर्य की आधारभूत इस वेदवाणी को **आस्थापयाति**=स्थापित करता है। यह वेदवाणी **दिव्यम्**=प्रकाशमय है, **सुपर्णम्**=ज्ञान के द्वारा हमारा पालन व पूरण करनेवाली है। **पयसम्**=आप्यायन (वर्धन) की साधनभूत, **बृहन्तम्**=बढ़ानेवाली है। यह हमें सब वासनाओं से बचाकर बढ़ी हुई शक्तिवाला करती है। २. यह वेदवाणी **अपां गर्भम्**=सब कर्मों को अपने अन्दर धारण करनेवाली है, इसमें हमारे सब कर्त्तव्य-कर्मों का निर्देश हुआ है। **ओषधीनां वृषभम्**=ओषधियों में यह श्रेष्ठ है। सब काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को यह विनष्ट करनेवाली है। **अभीपतः**=(अभीपत्) अपनी ओर आते हुए जनों को **वृष्ट्या तर्पयन्तम्**=ज्ञानवृष्टि से तृप्त करती हैं।

**भावार्थ**—सरस्वान् प्रभु हमारे हृदयों में उस ज्ञानप्रकाश को स्थापित करता है जो सब प्रकार से हमारा वर्धन करता है, हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करता है।

## ४०. [ चत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सरस्वान्** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

### प्रभु के व्रत में

**यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।**
**यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे॥ १॥**

१. **यस्य व्रतम्**=जिसके व्रत का **सर्वे पशवः यन्ति**=सब पशु अनुगमन करते हैं, अर्थात् प्रभु ने सब पशुओं में वासना की स्थापना की है, उस वासना के अनुसार सब पशु कर्मों से प्रेरित होते है, **यस्य व्रते**=जिसके व्रत में **आपः उपतिष्ठन्ते**=जल हमारे समीप उपस्थित होते हैं। ये जल बहते-बहते समुद्र में जा मिलते हैं, वहाँ से सूर्य-किरणों द्वारा वाष्पीभूत होकर अन्तरिक्ष में पहुँचते हैं और वृष्टि द्वारा हमें फिर प्राप्त होते हैं। २. **यस्य व्रते**=जिसके नियम में **पुष्टपतिः**=सब पोषणों का स्वामी यह सूर्य—सब प्राणशक्तियों को अपनी किरणों में लिये हुए यह सूर्य, **निविष्टः**=अपने मार्ग में विद्यमान है, **तम्**=उस **सरस्वन्तम्**=महान् विज्ञानराशि प्रभु को **अवसे हवामहे**=अपने रक्षण के लिए पुकारते हैं।

**भावार्थ**—सब पशु, जल व सूर्य जिस प्रभु के निर्धारित व्रतों में चल रहे हैं। उस विज्ञानस्वरूप प्रभु को हम अपने रक्षण के लिए पुकारते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सरस्वान्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### दाशुषे दाश्वांसम्

**आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वांसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम्।**
**रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम्॥ २॥**

१. हम **इह**=इस जीवन में **वसानाः**=हवि आदि से प्रभु की परिचर्या करते हुए (विवासतिः परिचरणकर्मा) उस प्रभु को **आ हुवेम**=पुकारते हैं जो **प्रत्यञ्चम्**=हम सबके अन्दर गति करनेवाले हैं, **दाशुषे दाश्वांसम्**=अपना अर्पण करनेवाले के लिए सब-कुछ देनेवाले हैं, **सरस्वन्तम्**=ज्ञान के प्रवाहवाले व **पुष्टपतिम्**=सब पोषणों के स्वामी हैं, **रयिष्ठाम्**=सब ऐश्वर्यों के अधिष्ठाता हैं, २. **रायस्पोषम्**=सब धनों का पोषण करनेवाले, **श्रवस्युम्**=सब अन्नों को प्राप्त करानेवाले (श्रवः=अन्नम्) तथा **रयीणां सदनम्**=ऐश्वर्यों के निवासस्थान हैं।

**भावार्थ**—हम प्रभु की आराधना करें। प्रभु ही सब-कुछ देनेवाले व सबका पोषण करनेवाले हैं।

## ४१. [ एकचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**श्येनः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

### श्येनः, अवसानदर्शः

**अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः।**
**तरन्विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात्॥ १॥**

१. वे प्रभु **धन्वानि**=मरुदेशों को **अति**=अतिक्रान्त करके **अपः अतिततर्द**=जलों को अतिशयेन खोल देते हैं। निरुदक प्रदेशों में भी वृष्टि की व्यवस्था करते हैं। **श्येनः**=वे शंसनीय गतिवाले हैं, **नृचक्षाः**=सब मनुष्यों को देखनेवाले, उनके कर्मों के साक्षी हैं, **अवसानदर्शः**=

(अवसीयते निश्चीयते इति अवसानं कर्मफलम्) कर्मफल को दिखलानेवाले हैं, सबको कर्मानुसार फल देनेवाले हैं। २. **विश्वानि**=सब **अवरा रजांसि**=निचले लोकों को **तरन्**=(तारयन्) पार कराता हुआ **शिवः**=वह कल्याणकारी प्रभु **सख्या इन्द्रेण**=मित्रभूत जितेन्द्रिय पुरुष को **आजगम्यात्**=प्राप्त होता है। सखा इन्द्र के साथ प्रभु का मेल हो। प्रभु हमें निचले लोकों से ऊपर उठाएँ, हमें जितेन्द्रिय बनने का सामर्थ्य दें और हमें प्राप्त हों।

**भावार्थ**—प्रभु हमारे कल्याण के लिए निरुदक प्रदेशों में भी वृष्टि की व्यवस्था करते हैं। वे प्रशंसनीय गतिवाले प्रभु हमारे कर्मों के साक्षी व कर्मफल प्रदाता हैं। वे हमें निचले लोकों से तराते हुए तथा जितेन्द्रिय बनने का सामर्थ्य देते हुए प्राप्त हों।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**श्येनः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सुपर्णः सहस्रपात्

**श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः।**
**स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत्॥ २॥**

१. वे प्रभु **श्येनः**=शंसनीय गतिवाले हैं, **नृचक्षाः**=मनुष्यों के देखनेवाले, उनके कर्मों के साक्षी हैं, **दिव्यः**=प्रकाशमय व **सुपर्णः**=उत्तमता से हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। **सहस्रपात्**=अनन्त चरणोंवाले व सर्वत्र गतिवाले हैं, **शतयोनिः**=शतवर्षपर्यन्त इस शरीर-गृह को प्राप्त करानेवाले व **वयोधाः**=प्रकृष्ट जीवन को धारण करानेवाले हैं। २. **सः**=वे प्रभु **नः**=हमारे लिए उस **वसु**=धन को **नियच्छात्**=दें **यत्**=जो **पराभृतम्**=सुदूर धारण किया गया है। जिस धन को यज्ञादि में विनियुक्त करके दूर पहुँचाया गया है। **अस्माकम्**=हमारा वह धन **पितृषु स्वधावत् अस्तु**=पितरों में स्वधावाला हो—पितरों के लिए अर्पित होता हुआ हमारा धारण करनेवाला हो। जब हम उस धन को पितरों के लिए देंगे, तब हमारी सन्तानें भी वैसा पाठ पढ़ेंगी और हमारे लिए उसी प्रकार धन प्राप्त कराएँगी। इसप्रकार पितरों को देते हुए हम अपना ही धारण कर रहे होते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु शंसनीय गतिवाले व हमारे लिए उत्कृष्ट धन को धारण करानेवाले हैं। वे हमें धन दें। यह धन यज्ञादि द्वारा सुदूर देवों में निहित हो और इसके द्वारा हम पितृयज्ञ करनेवाले हों।

## ४२. [ द्विचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**सोमारुद्रौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सोमारुद्रा

**सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।**
**बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्॥ १॥**

१. हमारे शरीर में 'सोम' जल व शान्ति का प्रतीक है तथा 'रुद्र' अग्नि व शक्ति का। **सोमारुद्रा**=ये दोनों जल व अग्नितत्त्व (शान्ति+शक्ति, आपः+ज्योतिः) **विषूचीम्**=(विष्वग् गमनाम्) शरीर में चारों ओर फैलनेवाली बीमारी को **विवृहतम्**=विनष्ट कर डाले (वृह् उद्यमने) उखाड़ फेंके। **या अमीवा**=जो रोग **नः**=हमारे **गयम् आविवेश**=गृह व शरीर में सर्वतः व्याप्त हो गया है, उस रोग को ये सोम और रुद्र उखाड़कर दूर कर दें। २. और **निर्ऋतिम्**=निकृष्टगमनहेतु—रोगनिदानभूत अशुभवृत्ति को **पराचैः**=(पराङ्मुखं, पराचैः इति अव्ययम्) पराङ्मुख करके **दूरं बाधेथाम्**=हमसे दूर ही रोक दें। इसप्रकार दूर रोक दें कि यह पुनः हमारे पास न आ सके।

**कृतं चित् एनः**=इस निर्ऋति के कारण किये हुए पाप व कष्ट को ये सोम और रुद्र **अस्मत्**=हमसे **प्रमुमुक्तम्**=छुड़ा दें।

**भावार्थ**—जीवन में जल व अग्नि का समन्वय आवश्यक है, आपः व ज्योतिः (शान्ति व शक्ति) का समन्वय ही रोगों, निर्ऋतियों व कष्टों को दूर करता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## मुञ्चतं, अवस्यतम्

**सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद्विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।**
**अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत्तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्॥ २॥**

१. हे **सोमारुद्रा**=सोम व रुद्र (जल व अग्नि) **युवम्**=आप दोनों **एतानि विश्वा भेषजानि**=इन रोगनिर्हरणक्षम औषधों को **अस्मत् तनूषु**=हमारे शरीरों में **धत्तम्**=स्थापित करो। आपः व ज्योति के समन्वय से वह रस उत्पन्न होता है, जो अमृतम्=नीरोगता देता है। २. **नः**=हमारे **तनूषु बद्धम्**=शरीरों में सम्बद्ध **यत्**=जो **कृतं एनः असत्**=किया गया पाप व कष्ट हो, उसे **अस्मत् मुञ्चतम्**=हमसे विश्लिष्ट (पृथक्) कर दो। हमसे पृथक् करके **अवस्यतम्**=इसे सुदूर विनष्ट ही कर डालो।

**भावार्थ**—'सोम और रुद्र' का समन्वय रस-विशेष को उत्पन्न करके सब रोगों के विनाश का कारण बने।

## ४३. [ त्रिचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**वाक्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### तुल्यनिन्दास्तुतिः ( मौनी )

**शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः।**
**तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पपातानु घोषम्॥ १॥**

१. हे मिथ्याभिशप्त पुरुष! **ते**=तेरे विषय में **एकाः**=एक तो **शिवाः**=स्तुतिरूप कल्याणी वाणी है। कितने ही व्यक्ति तेरे लिए प्रशंसात्मक शुभ शब्द बोलते हैं तथा **ते**=तेरे विषय में **अशिवाः**= अस्तुतिरूप=निन्दात्मक **एकाः**=अन्य वाणियाँ हैं, अर्थात् कितने ही व्यक्ति तेरे लिए निन्दा के शब्दों का प्रयोग करते हैं। तू उन **सर्वाः**=सब वाणियों को **सुमनस्यमानः**='सुमना' की तरह आचरण करता हुआ, अर्थात् प्रसन्न मनवाला होता हुआ **बिभर्षि**=धारण करता है। २. तू इसप्रकार सोच कि निन्दावाक्य भी तो 'परा-पश्यन्ती-मध्यमा व वैखरी' रूप से चतुष्टयात्मक हैं। उनमें **तिस्रः वाचः**='परा-पश्यन्ती-मध्यमा' ये तीन वाणियाँ तो **अस्मिन्**=इस शब्द प्रयोक्ता पुरुष के **अन्तः निहिताः**=अन्दर ही अवस्थित होती हैं। **तासाम्**=उन चतुष्टयात्मक वाणियों में **एका**=एक वैखरीरूप वाणी ही **घोषम् अनु विपपात**=तालु व ओष्ठ व्यापारजन्य ध्वनि का लक्ष्य करके विशेषेण वर्णपदादिरूपेण प्रवृत्त होती है। उस निन्दात्मक वाक्य के तीन भाग तो उस प्रयोक्ता में ही रहे। एक ही तो मुझे प्राप्त हुआ है। इसप्रकार अधिक हानि तो निन्दा करनेवाले की ही है।

**भावार्थ**—हम निन्दा-स्तुति में समरूप से स्वस्थ मनवाले बने रहें। यह सोचें कि निन्दात्मक वाक्य का एक भाग ही तो हमारी ओर आता है, तीन भाग इस प्रयोक्ता के शरीर में ही स्थित होते हैं, एवं निन्दक की ही हानि है, हमारी नहीं।

## ४४. [ चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रः, विष्णुः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

### इन्द्राविष्णू

**उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः।**
**इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्॥ १॥**

१. 'इन्द्र' जितेन्द्रिय पुरुष है—इन्द्रियों का अधिष्ठाता। 'विष्णु' विष् व्याप्तौ, व्यापक व उदार हृदयवाला है। इन्द्र और विष्णु ये **उभा**=दोनों ही **जिग्यथुः**=विजयी होते हैं, **न पराजयेथे**=ये कभी पराजित नहीं होते। **एनयोः**=इन दोनों में से **कतरः चन**=कोई भी **न पराजिग्ये**=पराजित नहीं होता। 'जितेन्द्रियता व उदारता' विजय-ही-विजय का साधन हैं। २. हे **विष्णो**=विष्णो! तू **इन्द्रः च**=और इन्द्र **यत् अपस्पृधेथाम्**=जब परस्पर एक-दूसरे से बढ़कर विजय की स्पर्धावाले होते हो, **तत्**=तब **सहस्रम्**=(सहस् शक्ति) बड़ी प्रबलता के साथ **त्रेधा वि ऐरयेथाम्**=तीन प्रकार से शत्रुओं को कम्पित करके दूर भगानेवाले होते हो। 'काम' को दूर भगाकर आप इस पृथिवीरूप शरीर का रक्षण करते हो। क्रोध को दूर करके हृदयान्तरिक्ष को शान्त बनाते हो तथा लोभ के विनाश से अनावृत्त मस्तिष्क-गगन में ज्ञानसूर्य को दीप्त करते हो। 'स्वास्थ्य, शान्ति व दीप्ति' की प्राप्ति ही त्रेधा विक्रमण है।

**भावार्थ**—हम जितेन्द्रिय व उदारहृदय बनकर विजयी बनें। काम-क्रोध-लोभ को पराजित करके हम स्वस्थ, शान्त व दीप्त जीवनवाले हों।

## ४५. [ पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**ईर्ष्यापनयनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### ईर्ष्या-भेषजम्

**जनाद्विश्वजनीनात्सिन्धुतस्पर्याभृतम्।**
**दूरात्त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम्॥ १॥**

१. वस्तुतः 'ज्ञान' (चिन्तन—संसार को तात्त्विक दृष्टि से देखना) ही 'ईर्ष्या' का औषध है। हे ज्ञान! मैं **त्वा**=तुझे **ईर्ष्यायाः**=ईर्ष्या का **नाम**=झुका देनेवाला, दबा देनेवाला **भेषजम्**=औषध **मन्ये**=मानता हूँ। ज्ञान के द्वारा ईर्ष्या नष्ट हो जाती है। यह ज्ञान **जनात्**=उस पुरुष के जीवन-व्यवहार व उपदेश से **पर्याभृतम्**=प्राप्त होता है जो **विश्वजनीनात्**=सबके हित में प्रवृत्त है, तथा **सिन्धुतः**=ज्ञान का समुद्र ही है तथा समुद्र के समान ही गम्भीर होने से 'समुद्र' ही है, (स+मुद्) प्रसन्नता से युक्त—ईर्ष्या, द्वेष व क्रोध से शून्य है। २. हे ज्ञान! मैं तुझे **दूरात् उद्भृतं मन्ये**=दूर से ही उद्भृत मानता हूँ। 'यह ज्ञान उस पुरुष के समीप प्राप्त होने पर ही मिलेगा', ऐसी बात नहीं। उस महापुरुष के जीवन का ध्यान करने से ही प्राप्त हो जाता है और हमें भी उस ज्ञानी के समान ईर्ष्या से ऊपर उठने के लिए प्रेरित करता है।

**भावार्थ**—हम ज्ञान की प्रवृत्तिवाले बनें। ज्ञानी पुरुषों के व्यवहार का चिन्तन करें और 'ईर्ष्या' से ऊपर उठने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**ईर्ष्यापनयनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### ईर्ष्याग्नि-शमन

**अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक्। एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय॥ २॥**

१. **अग्नेः इव दहतः**=अग्नि के समान क्रोध से मेरे कार्यों को नष्ट करते हुए **अस्य**=इस पुरोवर्ती ईर्ष्यालु पुरुष तथा **पृथक्**=प्रत्येक पदार्थ को अलग-अलग **दहतः**=भस्म करते हुए **दावस्य**=वनाग्नि के समान **एतस्य**=इस पुरोवर्ती ईर्ष्यालु पुरुष की **एताम् ईर्ष्याम्**=इस मद्विषयक ईर्ष्या को **उद्ना**=जल से **अग्निम् इव**=अग्नि की भाँति **शमय**=शान्त कर दो। जैसे जल से अग्नि को शान्त कर देते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष की ईर्ष्या को ज्ञान-जल द्वारा शान्त कर दो।

**भावार्थ**—ईर्ष्या के कारण मनुष्य दूसरे के कार्यों को नष्ट करने में शक्ति का अपव्यय करता है। ज्ञान द्वारा इस ईर्ष्या की अग्नि को इसप्रकार बुझा दिया जाए, जैसेकि जल से अग्नि को बुझा देते हैं।

ईर्ष्या आदि को शान्त करके यह स्थिर चित्तवृत्तिवाला 'अथर्वा' बनता है। यह 'अथर्वा' ही अगले चार सूक्तों का ऋषि है। स्थिर चित्तवाले पति-पत्नी का इन मन्त्रों में वर्णन है—

## ४६. [ षट्चत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सिनीवाली**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### सिनीवाली पृथुष्टुका

**सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।**
**जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ १॥**

१. **सिनीवालि**=(सिनं=अन्नं, वालं=पर्व) पर्वों में अन्नवाली, अर्थात् पर्वों में अन्नदान करनेवाली, **पृथुष्टुके**=बहुत स्तुतिवाली व (बहुभिः संस्तुते) बहुतों से संस्तुत, **या**=जो तू **देवानां स्वसा असि**=(स्वयं सारिणी) दिव्य गुणों को अपने अन्दर प्रसारित करनेवाली (देवों की बहिन) है। हे वीर पत्नि! प्रजाओं का पालन करनेवाली तू **आहुतं हव्यम्**=अग्निकुण्ड में आहुत किये गये यज्ञावशिष्ट हव्य (पवित्र) पदार्थों को ही **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाली बन। २. इसप्रकार पर्वों पर अन्नदान करनेवाली, प्रभुस्तवन की वृत्तिवाली, दिव्यगुणों को धारण करनेवाली व यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाली हे **देवि**=प्रकाशमय जीवनवाली! तू **नः**=हमारे लिए **प्रजाम्**=उत्तम सन्तान को **दिदिड्ढि**=दे (दिशतेः लोटि शपः श्लुः)।

**भावार्थ**—गृहपत्नी को चाहिए कि वह पर्वों पर अन्नदान करनेवाली, प्रभुस्तवन की वृत्तिवाली, दिव्य गुणों की धारिका, यज्ञशेष का सेवन करनेवाली बने। ऐसा होने पर ही वह उत्तम सन्तति को जन्म दे पाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सिनीवाली**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### सुषूमा बहुसूवरी

**या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी।**
**तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन॥ २॥**

१. **या सुबाहुः**=जो उत्तम भुजाओंवाली, **स्वंगुरिः**=उत्तम अंगुलियोंवाली, **सुषूमा**=उत्तम योनि-(उत्पादक अंगों)-वाली और **बहुसूवरी**=बहुत सन्तानों को जन्म देनेवाली है, **तस्यै**=उस **सिनीवाल्यै**=पर्वों में अन्न देनेवाली **विश्पत्न्यै**=प्रजाओं की रक्षक गृहपत्नी के लिए **हविः जुहोतन**=ग्रहण-योग्य पदार्थों को प्राप्त कराओ। २. पति को चाहिए कि वह इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खे कि पत्नी को गृह की सुव्यवस्था के लिए किसी पदार्थ की कमी न रहे।

**भावार्थ**—उत्तम पत्नी वही है जिसके अंग उत्तम हैं, जो उत्तम सन्तानों को जननेवाली है, अन्न आदि का दान व प्रजाओं का रक्षण करती है। पति को चाहिए कि इस पत्नी के लिए

आवश्यक पदार्थों की कमी न होने दे।

**सूचना**—मन्त्र का यह भाव भी हो सकता है कि पति ऐसी पत्नी को प्राप्त करने के लिए यज्ञशील हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सिनीवाली**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

**इन्द्रं प्रतीची अभियन्ती देवी**

**या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्त्रस्तुकाभियन्ती देवी।**
**विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व॥ ३॥**

१. **या विश्पत्नी**=जो प्रजाओं का पालन करनेवाली तू **इन्द्रं प्रतीची असि**=जितेन्द्रिय पति के अभिमुख प्राप्त होनेवाली है, वह तू **सहस्त्रस्तुका**=सहस्रों स्तुतियोंवाली, खूब ही प्रभुस्तवन करनेवाली **अभियन्ती**=कर्त्तव्य-कर्मों की ओर गतिवाली **देवी**=प्रकाशमय जीवनवाली है। २. हे **विष्णोः पत्नि**=उदार-हृदयवाले पति की पत्नि! **तुभ्यं हवींषि राता**=तेरे लिए सब हव्य पदार्थ इस पति द्वारा प्राप्त कराये गये हैं। हे **देवि**=दिव्य गुणों को धारण करनेवाली पत्नि! तू **पतिम्**=पति को **राधसे**=सिद्धि के लिए, कार्यों में सफलता के लिए अथवा ऐश्वर्य के लिए **चोदयस्व**=प्रेरित कर।

**भावार्थ**—पत्नी पति के लिए अनुकूल हो, प्रभुस्तवनपूर्वक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाली व प्रकाशमय जीवनवाली हो। यह सदा उदार-हृदय पति को ऐश्वर्य के लिए प्रेरित करनेवाली होती है।

## ४७. [ सप्तचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**कुहूः**॥ छन्दः—**जगती**॥

**कुहू देवी**

**कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन्यज्ञे सुहवा जोहवीमि।**
**सा नो रयिं विश्ववारं नियच्छाद्ददातु वीरं शतदायमुक्थ्य ँ म्॥ १॥**

१. **कुहूम्**=(कुह विस्मापने) अद्भुत क्रियाशीलता व कार्यकुशलता से विस्मापनशीला, (कुहूर्गृहते, सती हूयते इति वा—नि० ११।३२) घर की बातों को संवृत रखनेवाली व 'कहाँ हो?' इसप्रकार पति से पुकारी जानेवाली **देवीम्**=प्रकाशमय जीवनवाली **सुकृतम्**=शोभन कर्मोंवाली, **विद्मना अपसम्**=ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाली पत्नी को **अस्मिन् यज्ञे**=इस गृहस्थ-यज्ञ में **जोहवीमि**=पुकारता हूँ। २. **सुहवा सा**=उत्तमता से पुकारने योग्य वह पत्नी **नः**=हमारे लिए **विश्ववारं रयिम्**=सबसे वरण के योग्य ऐश्वर्य को **नियच्छात्**=प्राप्त कराए व उस धन का सम्यक् नियमन करे और हमारे लिए **वीरम्**=वीर **शतदायम्**=सैकड़ों धनों का दान करनेवाले **उक्थ्यम्**=प्रशस्त जीवनवाले सन्तान को **ददातु**=प्राप्त कराए।

**भावार्थ**—अद्भुतरूप से कार्यकुशल, ज्ञानपूर्वक कर्मों को करनेवाली पत्नी इस गृहस्थ-यज्ञ में धन का ठीक प्रकार से नियमन करती हुई, हमें वीर सन्तानों को प्राप्त कराये।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**कुहूः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

**देवानाम् अमृतस्य पत्नी**

**कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत।**
**शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु॥ २॥**

१. **कुहूः**=अपनी कार्यकुशलता से सबको विस्मित करनेवाली, **देवानाम्**=दिव्य गुणों का

तथा **अमृतस्य**=नीरोगता का **पत्नी**=रक्षण करनेवाली यह **हव्या**=पुकारने योग्य व प्रभु का आह्वान करने में उत्तम पत्नी **नः**=हमारी **अस्य हविषः**=इस हवि का **जुषेत**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाली हो। यह यज्ञशील हो। २. **यज्ञं उशती**=यज्ञों की कामना करती हुई, यह **नः शृणोतु**=हमारी पुकार को सुने और **चिकितुषी**=समझदार होती हुई **अद्य**=आज **रायस्पोषं दधातु**=हमारे लिए धनों का पोषण करे।

**भावार्थ**—उत्तम गृहपत्नी वही है जो 'कार्यकुशलता, दिव्यगुणों व नीरोगता को धारण करनेवाली तथा प्रभुस्तवन की वृत्तिवाली है। यह यज्ञों का सेवन करती हुई प्रभु की पुकार को सदा स्मरण करे। यह हमारे लिए धनों का पोषण करे।

## ४८. [ अष्टचत्वारिंशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**राका**॥ छन्दः—**जगती**॥

### राका

**राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।**
**सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्य ⌠म्॥ १॥**

१. **राकाम्**=(राका पूर्णे निशाकरे) पूर्ण निशाकर (चन्द्र) के समान शोभायमान इस गृहपत्नी को मैं **सुहवा**=उत्तम प्रकार से तथा **सुष्टुती**=उत्तम स्तुतिवचनों द्वारा **हुवे**=पुकारता हूँ। यह **सुभगा**=सौभाग्यवती पत्नी **नः शृणोतु**=हमारी पुकार को सुने। **त्मना बोधतु**=और स्वयं ही कुशलता से हमारे अभिप्राय को समझनेवाली हो। २. हमारे अभिप्राय को समझती हुई यह **अच्छिद्यमानया सूच्या अपः सीव्यतु**=न छिन्न होती हुई सूचीस्थानीया 'सीवनी' नाड़ी से प्रजनन लक्षण कर्म को सतत करे (षिवु तन्तुसन्ताने) (राका ह वा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति यैषा शिश्नेऽधि, पुमांसो अस्य पुत्रा जायन्ते—ऐ० ३।३७)। २. यह राका हमारे लिए **वीरम्**=वीरता से युक्त, **शतदायम्**=सैकड़ों धनों का दान करनेवाले, **उक्थ्यम्**=प्रशंसनीय पुत्र को **ददातु**=दे, हमारे लिए 'प्रशस्त, उदार, वीर' सन्तानों को प्राप्त कराए।

**भावार्थ**—पत्नी पूर्णचन्द्र के समान चमके, सब गुणों से युक्त हो। यह पति के अभिप्राय को समझती हुई 'प्रशस्त, उदार, वीर' सन्तान को जन्म दे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**राका**॥ छन्दः—**जगती**॥

### सुपेशसः 'सुमतयः'

**यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।**
**ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा॥ २॥**

१. हे **राके**=पूर्णचन्द्रवत् शुभानने! अथवा सब-कुछ प्राप्त करानेवाली (रा दाने) गृहपत्नि! **याः**=जो **ते**=तेरी **सुमतयः**=उत्तम मतियाँ हैं, वे **सुपेशसः**=उत्तम सौन्दर्य का निर्माण करनेवाली हैं, **याभिः**=जिन सुमतियों से **दाशुषे**=तेरे लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करानेवाले इस पति के लिए तू **वसूनि**=निवास के लिए आवश्यक सब पदार्थों को **ददासि**=देती है। पति धन प्राप्त कराता है, पत्नी उस धन का सदुपयोग करती हुई वसुओं को उपस्थित करती है। २. **ताभिः**=उन सुमतियों के साथ **अद्य**=आज **सुमनाः**=प्रशस्त मनवाली होती हुई तू **नः उपागहि**=हमें समीपता से प्राप्त हो। हे **सुभगे**=उत्तम सौभाग्यसम्पन्न पत्नि! तू **सहस्रापोषं ररणा**=हज़ारों प्रकार से पोषणों को प्राप्त करानेवाली हो और सुभगा होती हुई इस घर को सौभाग्यसम्पन्न बना।

**भावार्थ**—पत्नी को पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभावाला होना चाहिए। वह अपनी उत्तम

मतियों से सब वसुओं को जुटानेवाली हो। उसके कारण घर सब प्रकार से पोषण को प्राप्त हो।

## ४९. [ एकोनपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**देवपत्न्यः**॥ छन्दः—**आर्षीजगती**॥

### तुजये वाजसातये

**देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।**
**याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु॥ १॥**

१. **देवानां पत्नीः**=दिव्य गुणों का अपने में रक्षण करनेवाली, **उशतीः**=हित की कामनावाली, ये पत्नियाँ **नः अवन्तु**=हमें प्रीणित करनेवाली हों। **नः**=हमें **तुजये**=उत्तम सन्तानों को प्राप्त कराने के लिए तथा **वाजसातये**=शक्तिप्रद अन्न प्राप्त कराने के लिए **प्रावन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। २. **याः**=जो ये पत्नियाँ **पार्थिवासः**=पृथिवी-स्थानीय हैं **( द्यौरहं पृथिवी त्वम् )** पृथिवीवत् दृढ़ व पालन करनेवाली हैं, **अपि**=और (अपि=चार्थे) **याः**=जो **अपां व्रते**=जलों के व्रत में स्थित हैं, जलों की भाँति ही शान्त, मधुर स्वभाववाली हैं। **ताः**=वे **देवीः**=दिव्य गुणोंवाली **सुहवाः**=शोभन आह्वानवाली पत्नियाँ **नः**=हमारे लिए **शर्म यच्छन्तु**=सुख दें।

**भावार्थ**—पत्नी का मुख्य कार्य उत्तम सन्तान को जन्म देना व सबके लिए स्वास्थ्यकर अन्न प्राप्त कराना है। ये अपने में दिव्य गुणों का रक्षण करें, पृथिवी की भाँति सबका पालन करनेवाली हों, जलों की भाँति शान्त व मधुर हों, सुन्दरता से पुकारनेवाली हों, घर में सुख का विस्तार करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**देवपत्न्यः**॥ छन्दः—**चतुष्पदापङ्क्तिः**॥

### ग्नाः व्यन्तु

**उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ ग्नाय्यश्विनी राट्।**
**आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥ २॥**

१. **उत**=और ये **देवपत्नीः**=(देवपतयो यासां ताः) दिव्यवृत्तिवाले पुरुषों की पत्नियाँ **ग्नाः व्यन्तु**=इन वेदवाणियों की कामना करें (कामयन्ताम् अश्नन्तु वा) ये वेदवाणियाँ ही इनका अध्यात्म भोजन बनें। ये **इन्द्राणी**=इन्द्र की पत्नी, जितेन्द्रिय पुरुष की पत्नी **अग्नायी**=अग्नि की पत्नी, प्रगतिशील पुरुष की पत्नी, **अश्विनी**=(अश्विनो जाया) प्राणापान के साधक पुरुष की पत्नी, **राट्**=राजन्ती, दीप्त जीवनवाली हो। २. यह **रोदसी** (रुद्रस्य जाया)=रुद्र की पत्नी, रोगों को दूर भगानेवाले पुरुष की पत्नी तथा **वरुणानी**=पापों का निवारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष की पत्नी **आशृणोतु**=सदा इन वेदवाणियों को सुनें तथा **देवीः**=ये दिव्य गुणोंवाली स्त्रियाँ **यः जनीनां ऋतुः**=जो जायाओं का (सन्तान को जन्म देनेवाली स्त्रियों का) काल है, उस समय **व्यन्तु**=वेदवाणियों की कामना करें। गर्भ में सन्तान की वृद्धि करनेवाली ये स्त्रियाँ यदि इस समय इन वाणियों को सुनेंगी तो 'इन्द्र, अग्नि, अश्विन्, रुद्र व वरुण' के गुणों से युक्त सन्तानों को जन्म देनेवाली होंगी।

**भावार्थ**—दिव्यगुणों को धारण करनेवाले पुरुषों की पत्नियाँ वेदवाणियों की कामना करती हुई 'जितेन्द्रिय, प्रगतिशील, प्राणशक्ति-सम्पन्न, नीरोग व निष्पाप जीवनवाली' सन्तानों को जन्म देंगी।

उत्तम माता से जन्म लेनेवाली यह सन्तान 'अङ्गिराः'=अंग-प्रत्यंग में रसवाली—शक्तिशाली होती है। 'अङ्गिराः' ही अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## ५०. [ पञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### कितव-निराकरण

**यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति। एवाहमद्य कितवान्क्षैर्बध्यासमप्रति॥ १॥**

१. **यथा**=जैसे **अशनिः**=वैद्युत अग्नि अप्रतिम=अनुपम शक्तिवाला होता हुआ **विश्वाहा**=सदा **वृक्षं हन्ति**=वृक्ष को नष्ट करता है, **एव**=इसी प्रकार **अहम्**=मैं **अद्य**=आज **अप्रति**=प्रतिपक्षरहित होता हुआ **कितवान्**=जुआरियों को **अक्षैः**=पासों के साथ **बध्यासम्**=नष्ट करता हूँ, राष्ट्र से इन्हें दूर करता हूँ। २. जुआ (द्यूत) अपुरुषार्थ का प्रतीक है। पुरुषार्थ के बिना धन प्राप्त करने के सब मार्ग राष्ट्र के अनैश्वर्य का कारण बनते हैं, अतः राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह राष्ट्र में द्यूतप्रवृत्तियों को जागरित न होने दे।

**भावार्थ**—राजा को चाहिए कि राष्ट्र में द्यूतप्रवृत्ति को न पनपने दे।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### श्री का निवास कहाँ?

**तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्।**
**समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम॥ २॥**

१. **तुराणाम्**=जल्दबाज़ों का, बिना विचारे शीघ्रता से कार्य करनेवालों का, **अतुराणाम्**=आलस्य के कारण स्फूर्ति से कार्य न कर सकनेवालों का, **अवर्जुषीणाम्**=बुराइयों को, अन्याय्य मार्गों को न छोड़नेवाली **विशाम्**=प्रजाओं का **भगः**=ऐश्वर्य **विश्वतः**=सब ओर से **समैतु**=मुझे प्राप्त हो। इन दोषों से रहित यह ऐश्वर्य **मम अन्तः हस्तं कृतम्**=मेरे हाथों के अन्दर किया जाए।

**भावार्थ**—ऐश्वर्य (श्री) का निवास वहाँ होता है जहाँ १. सब कार्य विचारपूर्वक किये जाएँ, जल्दबाजी में नहीं २. जहाँ आलस्य न करके कार्यों को स्फूर्ति से किया जाए और ३. जहाँ अशुभ व अन्याय्य मार्ग का वर्जन हो।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### 'स्वावसु' प्रभु

**ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः।**
**रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम्॥ ३॥**

१. मैं **स्वावसुम्**=हमारे अन्दर ही निवास करनेवाले **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **नमोभिः**=नमस्कारों द्वारा **ईडे**=पूजित करता हूँ। **इह**=यहाँ हमारे जीवनों में **प्रसक्तः**=प्रकर्षेण सम्बद्ध हुआ-हुआ वह प्रभु **नः कृतं विचयत्**=हमारे पुरुषार्थ का वर्धन करे। प्रभु का निवास हमारे अन्दर ही है। वहाँ हृदय में हम प्रभु के साथ बैठने का यत्न करें, प्रभु हमारे पुरुषार्थ व पुण्य का वर्धन करेंगे। २. **वाजयद्भिः**=शक्तिशाली की भाँति आचरण करते हुए **रथैः**=रथों से **इव**=जिस प्रकार शत्रु पर आक्रमण किया जाता है, उसी प्रकार मैं **प्रभरे**=शत्रुओं पर आक्रमण करता हूँ। इसप्रकार शत्रुओं का पराजय करता हुआ मैं **मरुतां स्तोमम्**=प्राणों के समूह को **प्रदक्षिणम्**=अनुक्रमेण **ऋध्याम्**=बढ़ानेवाला बनूँ। काम, क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करके मैं उपचित (बढ़ी हुई) प्राणशक्तिवाला बनूँ।

**भावार्थ**—हम अन्तःस्थित प्रभु का हृदय-देश में ध्यान करें। प्रभु हमारे पौरुष को बढ़ाएँ। हम शत्रुओं को पराजित करें। इसप्रकार काम-क्रोध आदि को विनष्ट करके हम अपनी

प्राणशक्ति का वर्धन करें।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

## विजय

**वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।**
**अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज॥ ४॥**

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **त्वया युजा**=आपके साथ मिलकर **वयम्**=हम **वृतम्**=हमें घेर लेनेवाले व हमपर आवरण के रूप में आ जानेवाले 'काम,क्रोध,लोभ' रूप शत्रुओं को **जयेम**=जीतें। **अस्माकम् अंशम्**=हमारे अंश (भाग) को **भरेभरे**=प्रत्येक संग्राम में आप **उद् अव**=प्रकर्षेण रक्षित कीजिए। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **सुगं वरीयः कृधि**=सुगमता से प्राप्य श्रेष्ठ धन दीजिए, हम कुटिल मार्गों से धनार्जन करनेवाले न हों। हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **शत्रूणां वृष्ण्या**=शत्रुओं के बलों को **प्ररुज**=प्रकर्षेण भग्न कीजिए, आपके साथ हम शत्रुओं पर विजय पानेवाले बनें।

**भावार्थ**—जीवन-संग्राम में प्रभु का स्मरण करते हुए हम काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त करें और उत्तम मार्गों से न्याय्य धनों का अर्जन करें।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## शत्रुओं को कुचल देना

**अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम्।**
**अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम्॥ ५॥**

१. हे राजस् व तामस् भाव! **संलिखितं त्वा**=हृदयपटल पर सम्यक् लिखित (अंकित) हुए-हुए भी तुझे **अजैषम्**=मैं पराजित करता हूँ। **उत**=और **संरुधम्**=उन्नति के मार्ग में रोकनेवाले विघ्नभूत तुझे **अजैषम्**=मैं पराजित करता हूँ। २. **यथा**=जैसे **वृकः**=भेड़िया **अविं मथत्**=भेड़ को मथ डालता है **एव**=इसी प्रकार **ते कृतम्**=तेरे द्वारा उत्पन्न किये गये राजस् और तामस् सब विकारों को **मथ्नामि**=कुचल डालता हूँ।

**भावार्थ**—'काम, क्रोध' का हृदय में जो दृढ़ स्थापन हुआ है, उसे मैं उखाड़ फेंकता हूँ। इनके द्वारा उन्नति-पथ में होनेवाले विघ्नों को नष्ट करता हूँ। इन्हें कुचलकर मैं उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता हूँ।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

## लोभ-विजय

**उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले।**
**यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित्तं रायः सृजति स्वधाभिः॥ ६॥**

१. **उत**=और **अतिदीवा**=(दिव् विजिगीषायाम्) अतिशयेन विजय की कामनावाला यह साधक **प्रहाम्**=प्रकर्षेण नष्ट करनेवाले इस लोभ को **जयति**=जीतता है, लोभ को पराजित करके व्यसनवृक्ष के मूल को काटनेवाला बनता है। **श्वघ्नी**=(श्वघ्नी स्वं हन्ति—नि० ५।२२) लोभाभिभूत होकर आत्मघात करनेवाला यह व्यक्ति **कृतम् इव**=अपने किये हुए कर्मों के अनुसार **काले विचिनोति**=समय पर फल को संचित (प्राप्त) करता है। लोभ अन्ततः उसके विनाश का कारण बनता है **'अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति'**॥ लोभ के कारण न्याय्य-अन्याय्य सभी मार्गों से धनार्जन करता हुआ यह फूलता-

फलता है और खूब ऊँचा उठकर इसप्रकार गिरता है कि इसका समूल विनाश हो जाता है। २. **यः देवकामः**=जो दिव्यगुणों व प्रभुप्राप्ति की कामनावाला होता है, वह **धनं न रुणद्धि**=धन को अपने समीप रोकता नहीं, अपितु यज्ञादि उत्तम कर्मों में उसे प्रवाहित होने देता है, **तम् इत्**=उस देवकाम पुरुष को ही प्रभु **स्वधाभिः**=आत्मधारण-शक्तियों के साथ **रायः संसृजति**=धन देता है। असुरकाम पुरुष धनों के द्वारा ही व्यसनाक्रान्त होकर निधन को प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—विजिगीषु पुरुष लोभाभिभूत न होकर धनों को यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवाहित करता है। प्रभु इसे आत्मधारणशक्ति के साथ धनों को प्राप्त कराते हैं, परन्तु लोभाभिभूत होकर यह आत्मघात करता है, अपने किये कर्मों के परिणामस्वरूप कुछ देर चमककर समूल नष्ट हो जाता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## गोदुग्ध व यव

**गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे।**
**वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम॥ ७॥**

१. **गोभिः**=गोदुग्ध के सेवन से हम उस **अमतिम्**=कुत्सित मति को **तरेम**=पार कर जाएँ, जोकि **दुरेवाम्**=हमें दुष्टमार्ग पर ले-जाती है। गोदुग्ध सात्त्विक होने से हमें सुमति-सम्पन्न करके शुभ मार्ग पर ले-चलता है। हे **पुरुहूत**=बहुतों-से पुकारे जानेवाले प्रभो! **विश्वे**=हम सब **क्षुधम्**=भूख को **वा**=निश्चय से **यवेन**=जौ के द्वारा दूर करनेवाले हों। गोदुग्ध व जौ हमारा भोजन हो। २. इस सात्त्विक भोजन के द्वारा **वयम्**=हम **राजसु**=दीप्त जीवनवालों में **प्रथमाः**=प्रथम हों तथा **अरिष्टासः**=किसी भी प्रकार 'काम, क्रोध, लोभ' आदि शत्रुओं से हिंसित न होते हुए **वृजनीभिः**=पाप का वर्जन करनेवाली शक्तियों के द्वारा **धनानि जयेम**=धनों पर विजय प्राप्त करें।

**भावार्थ**—'गोदुग्ध व यव' वह सात्त्विक भोजन है जो हमें दुष्ट मार्ग पर ले-जानेवाली कुमति से बचाता है। गोदुग्ध व यव का सेवन करते हुए हम दीप्त जीवनवाले बनें। वासनाओं से हिंसित न होते हुए हम शुभ मार्गों से ही धनों का अर्जन करें।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## पुरुषार्थ और विजय

**कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।**
**गोजिद्भूयासमश्वजिद्धनंजयो हिरण्यजित्॥ ८॥**

१. **कृतम्**=पुरुषार्थ **मे दक्षिणे हस्ते**=मेरे दाहिने हाथ में हो, तब **मे सव्ये**=मेरे बायें हाथ में **जयः आहितः**=विजय स्थापित होती है। पुरुषार्थ से ही विजय प्राप्त होती है। मैं पुरुषार्थ करता हूँ और विजयी बनता हूँ। २. उस समय मैं **गोजित् भूयासम्**=गौवों का विजय करनेवाला, **अश्वजित्**=अश्वों का विजेता, **धनंजयः**=धनों का विजय करनेवाला और **हिरण्यजित्**=स्वर्ण का जीतनेवाला बनता हूँ अथवा मैं ज्ञानेन्द्रियों (गोजित्), कर्मेन्द्रियों (अश्वजित्), ज्ञानधन (धनंजयः), तथा हितरमणीय आत्मज्ञान (हिरण्यजित्) को प्राप्त करनेवाला बनता हूँ।

**भावार्थ**—पुरुषार्थ ही मनुष्य को विजयी बनानेवाला है। यह हमें 'गोजित्, अश्वजित्, धनंजय व हिरण्यजित्' बनाता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## पुरुषार्थमय जीवन

**अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव।**
**सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत॥ ९॥**

१. **अक्षाः**=हे इन्द्रियो! आप मुझे **फलवतीं द्युवम्**=सफल सार्थक व्यवहार को (दिव् व्यवहारे) **दत्त**=दो। मैं इन्द्रियों से जिन क्रियाओं को करूँ, वे सब क्रियाएँ सफल हों। मेरे लिए यह व्यवहार इसप्रकार फलवाला हो **इव**=जैसे **क्षीरिणीं गाम्**=दूधवाली गौ होती है। मुझसे किया गया व्यवहार मेरे लिए दुधारू गौ के समान लाभप्रद हो। २. हे इन्द्रियो! **मा**=मुझे **कृतस्य धारया**=पुरुषार्थ के धारण से इसप्रकार **संनह्यत**=बाँध दो, **इव**=जैसेकि **धनुः स्नाव्ना**=धनुष को स्नायु-निर्मित डोरी से बाँधते हैं। मेरे इस पुरुषार्थरूपी धनुष का एक सिरा मस्तिष्क हो, दूसरा हृदय। इन दोनों सिरों को कसकर मैं विद्या व श्रद्धा के साथ कर्मरूप तीरों को चलानेवाला बनूँ।

**भावार्थ**—मैं इन्द्रियों से सदा उत्तम पुरुषार्थ को सिद्ध करनेवाला बनूँ। मैं श्रद्धा और विद्या के साथ कर्म करता हुआ सफल जीवनवाला बनूँ।

## ५१. [ एकपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अङ्गिराः ( कितववधकामः )**॥ देवता—**इन्द्राबृहस्पती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## बृहस्पति+इन्द्र ( ज्ञान+शक्ति )

**बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।**
**इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु॥ १॥**

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **नः**=हमें **पश्चात्**=पीछे से **परिपातु**=रक्षित करे **उत**=और **उत्तरस्मात्**=उत्तर से व **अधरात्**=दक्षिण से **अघायोः**=जिघांसु—हमारे विनाश की कामनावाले पुरुष व शत्रुभूत 'काम, क्रोध, लोभ' से बचाये। २. **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला शक्तिशाली प्रभु **पुरस्तात्**=सामने से तथा **मध्यतः**=मध्यभाग से **नः**=हमें रक्षित करे। **सखा**=वह मित्रभूत प्रभु **सखिभ्यः नः**=हम मित्रों के लिए **वरीयः कृणोतु**=उत्कृष्ट धन प्रदान करे।

**भावार्थ**—हम ज्ञान और शक्ति का सम्पादन करते हुए सब हिंसक शत्रुओं से अपना रक्षण करें। अपना रक्षण करते हुए उत्कृष्ट धन प्राप्त करें।

ज्ञान और शक्ति का सम्पादन करता हुआ यह व्यक्ति 'अथर्वा' (स्थिर चित्तवृत्तिवाला) बनता है। यह 'सांमनस्य' वाला अथर्वा ही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ५२. [ द्विपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सांमनस्यम्, अश्विनौ**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

## संज्ञान—प्राणसाधना

**संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।**
**संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥ १॥**

१. **नः**=हमारा **स्वेभिः**=अपनों के साथ **संज्ञानम्**=ज्ञान—ऐकमत्य हो। **अरणेभिः**= (अरमणैः अनुकूलमवदद्भिः) प्रतिकूल पुरुषों के साथ भी **संज्ञानम्**=ऐकमत्य हो। २. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप दोनों **इह**=यहाँ इस जीवन में **अस्मासु**=हममें **संज्ञानं नियच्छतम्**= ऐकमत्य को नियमित करो, स्थापित करो। प्राणसाधना के द्वारा शुद्ध मनवाले होकर हम परस्पर ऐकमत्यवाले हों।

**भावार्थ**—हम प्राणायाम द्वारा मानस मलों का उपक्षय करते हुए परस्पर ऐकमत्यवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सांमनस्यम्, अश्विनौ**॥ छन्दः—**जगती**॥

## 'मन व बुद्धि' से परस्पर ऐक्य

**सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।**
**मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते॥ २॥**

१. **मनसा**=मन के द्वारा हम **संजानामहै**=समान विचारवाले हों तथा **चिकित्वा**=(चिकित्वना) ज्ञान से भी हम **सम्**=संज्ञानवाले हों। हमारे मन व बुद्धि हमें संज्ञान की ओर ले-चलें। हम **दैव्येन मनसा**=दिव्य गुणवाले मन से **मा युष्महि**=कभी पृथक् न हों। २. **बहुले**=(बहुल The dark half of month) कृष्णपक्ष के अन्धकार के **विनिर्हते**=नष्ट कर दिये जाने पर **घोषाः**=अन्धकार में होनेवाली ध्वनियाँ **मा उत्स्थुः**=न उठें, अर्थात् राष्ट्र में न्याय-व्यवस्था के ठीक होने से प्रकाश-ही-प्रकाश हो, लोगों में हाहाकार न मचता रहे और **अहनि आगते**=दिन निकलने पर **इन्द्रस्य इषुः** (अशनिः)=अशनिरूपा मर्मभेदिनी परकीया वाक् **मा पप्तत्**=हमपर न गिरे। वैमनस्य के कारण दूसरों की कठोर वाणियाँ हमपर न गिरें, हम परस्पर अनुकूल वाणीवाले हों।

**भावार्थ**—हम मन व बुद्धि से परस्पर संज्ञानवाले हों। हमारा मन दिव्य हो। हमारे राष्ट्र से अन्धकार दूर हो, हाहाकार न होता रहे और हमपर विद्युत् के समान मर्मभेदिनी वाणियाँ न गिरें।

इसप्रकार संज्ञानवाला यह व्यक्ति 'ब्रह्मा' (बड़ा) बनता है। अगले दो सूक्तों का ऋषि ब्रह्मा ही है—

## ५३. [ त्रिपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'यम व बृहस्पति' की अभिशस्ति से बचना

**अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः।**
**प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवानामग्रे भिषजा शचीभिः॥ १॥**

१. हे **अग्रे**=अग्रणी प्रभो! **यत्**=जब **अमुत्रभूयात्**=(परलोके भवनं अमुत्रभूयम्) परलोक में होने से, अर्थात् मृत्यु से या प्रतिक्षण परलोक की बातें करते रहकर इस लोक को सुन्दर न बनाने से आप **अधि अमुञ्चः**=हमें मुक्त करते हैं, **यमस्य अभिशस्तेः**=यम के हिंसन से, अर्थात् नियमपूर्वक (Regular) जीवन न बिताने से मुक्त करते हैं तथा **बृहस्पतेः** (अभिशस्तेः)=बृहस्पति के हिंसन से, अर्थात् स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवृद्धि न करने से मुक्त करते हैं, अर्थात् जब हम (क) परलोक की बातें न करके इस लोक को सुन्दर बनाने में लगते हैं, (ख) जब हम नियमपूर्वक, सूर्य-चन्द्रमा की भाँति व्यवस्थित जीवन बिताते हैं, (ग) और जब हम स्वाध्यायशील बनते हैं, तब **अश्विना**=प्राणापान **अस्मत्**=हमसे **मृत्युम्**=मृत्यु को **प्रत्यौहताम्**=दूर करते हैं। २. हे प्रभो! ये (अश्विना) प्राणापान **शचीभिः**=शक्तियों के द्वारा **देवानां भिषजा**=इन्द्रियों के वैद्य हैं। प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं और मनुष्य पूर्ण स्वस्थ बनता है।

**भावार्थ**—हम परलोक का चिन्तन न करते रहकर इस लोक को सुन्दर बनाएँ। २. 'यम' का हिंसन न करें, अर्थात् सूर्य-चन्द्र की तरह नियमित जीवनवाले बनें। ३. बृहस्पति का हिंसन न करें, अर्थात् स्वाध्यायशील बनें। ४. प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। ऐसा करने पर ये प्राणापान हमें स्वस्थ बनाकर दीर्घजीवी बनाएँगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## गोपाः, अधिपाः, वसिष्ठः, अग्निः

**सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्।**
**शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठ॥ २॥**

१. हे प्राणापानो! आप इस आयुष्काम पुरुष के शरीर में **संक्रामतम्**=मिलकर सम्यक् गतिवाले होवो। इसके **शरीरं मा जहीतम्**=शरीर को मत छोड़ो। हे आयुष्काम! **प्राणापानौ**=ये प्राणापान **ते इह**=तेरे इस शरीर से **सयुजौ स्ताम्**=परस्पर संयुक्त हों, मिलकर कार्य करनेवाले हों। जब तक ये मिलकर कार्य करते रहते हैं, तब तक जीवन ठीक बना रहता है। २. हे आयुष्काम! तू **शतं शरदः जीव**=सौ वर्षपर्यन्त जीवनवाला हो। **वर्धमानः**=तू शरीर में स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से, मन में नैर्मल्य के दृष्टिकोण से तथा बुद्धि में दीप्ति के दृष्टिकोण से सदा बढ़ता हुआ हो। **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **ते गोपाः**=तेरा रक्षक है, **अधिपाः**=अधिष्ठातृरूपेण पालन करनेवाला है, **वसिष्ठः**=वासयितृतम है, तेरे निवास को सर्वाधिक श्रेष्ठ बनानेवाला है।

**भावार्थ**—शरीर में प्राणापान मिलकर समुचित रूप से कार्य करते हुए हमें दीर्घजीवी बनाएँ। वह अग्रणी प्रभु हमारा रक्षक, पालक व वासयिता हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

## प्राणापान की अपराङ्मुखता

**आयुर्यत्ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम्।**
**अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात्तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते॥ ३॥**

१. हे आयुष्काम! **ते यत् आयुः**=तेरा जो जीवन **पराचैः अतिहितम्**=पराङ्मुख होकर चला गया है, **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **तत्**=उस जीवन को **निर्ऋतेः उपस्थात्**=निकृष्टगमन (मृत्यु) की गोद से **आ अहाः**=आहृत करे, वापस ले-आये। **तत्**=उस जीवन को **ते आत्मनि**=तेरे शरीर में **पुनः आवेशयमि**=फिर से स्थापित करता हूँ। २. **अपानः**=अपान और **प्राणः**=प्राण **तौ**=वे दोनों **पुनः**=फिर **आ इताम्**=यहाँ शरीर में चारों ओर गतिवाले हों। प्राणापान की क्रिया ठीक होकर ही दीर्घ जीवन प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—प्राणापान की पराङ्मुखता में मृत्यु है और इनकी अनुकूलता मृत्यु से ऊपर उठाकर दीर्घजीवन प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च**॥ छन्दः—**उष्णिग्गर्भार्षीपङ्क्तिः**॥

## सप्तर्षियों के प्रति अर्पण

**मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो ऽवहाय परा गात्।**
**सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु॥ ४॥**

१. **इमम्**=इस पुरुष को **प्राणः मा हासीत्**=प्राण मत छोड़ जाए और **मो**=मत ही **अपानः**=अपान **अवहाय**=छोड़कर **परागात्**=दूर चला जाए। इस पुरुष के शरीर में ये प्राणापान ठीक गति करते रहें। २. मैं **सप्तर्षिभ्यः**=सात शीर्षण्य प्राणों के लिए (दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख) **एनं परिददामि**=इसे दे डालता हूँ। इसकी रक्षा के लिए उन्हें सौंप देता हूँ। **ते**=वे **एनम्**=इस पुरुष को **स्वस्ति**=कल्याणपूर्वक **जरसे**=पूर्ण जरावस्था **वहन्तु**=प्राप्त कराएँ। यह युवावस्था में ही शरीर न छोड़ जाए।

**भावार्थ**—हमारे शरीर में प्राणापान की क्रिया ठीक हो। 'कान, नाक, आँख, मुख' सब

ठीक बने रहें। इसप्रकार हम पूर्ण दीर्घजीवन प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## जरिम्णाः, शेवधिः, अरिष्टः

**प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।**
**अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम्॥ ५॥**

१. हे **प्राणापानौ**=प्राण और अपान! **प्रविशतम्**=इस आयुष्काम के शरीर में प्रवेश करो। इसप्रकार प्रवेश करो **इव**=जैसेकि **अनड्वाहौ**=दो बैल **व्रजम्**=एक गोष्ठ में प्रवेश करते हैं। २. **अयम्**=यह आयुष्काम पुरुष **जरिम्णः शेवधिः**=जरा का—पूर्ण वृद्धावस्था का कोश हो। **अरिष्टः**=अहिंसित होता हुआ, मृत्यु की बाधा से रहित होता हुआ, सब इन्द्रियों से अहीन होता हुआ **इह वर्धताम्**=इस लोक में समृद्धि को प्राप्त हो।

**भावार्थ**—हमारे शरीर में प्राणापान अपने-अपने स्थान में ठीक प्रकार से स्थित हों। यह पुरुष दीर्घजीवी बने, सब अंगों में अहिंसित होता हुआ बढ़े।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## नीरोगता व दीर्घजीवन

**आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।**
**आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः॥ ६॥**

१. हे आयुष्काम पुरुष! **ते**=तेरे **प्राणम्**=प्राण को **आसुवामसि**=शरीर में समन्तात् प्रेरित करते हैं, और इसप्रकार **ते यक्ष्मम्**=तेरे रोग को **परासुवामि**=पराङ्मुख प्रेरित करते हैं। २. **अयम्**=यह **वरेण्यः**=वरणीय (संभजनीय) **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **नः**=हमारे लिए **विश्वतः**=सब ओर से, सब दृष्टिकोणों से **आयुः दधत्**=दीर्घजीवन धारण करे।

**भावार्थ**—प्राणशक्ति के ठीक से कार्य करने से हमारे शरीर नीरोग हों। प्रभु की उपासना करते हुए हम दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## देवत्रा देवम् ( उत्तम ज्योतिः )

**उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ ७॥**

१. (**'पाप्मा वै तमः'**—तै० ५।१।८।६) **वयम्**=हम **तमसः परि**=पाप से परे (ऊपर) **उत्**=उत्क्रान्त होते हुए **उत्तमम्**=उत्कृष्ट **नाकम्**=दुखसंस्पर्शरहित स्वर्ग को **रोहन्तः**=आरोहण करते हुए **सूर्यम्**=सबके प्रेरक प्रभु को **अगन्म**=प्राप्त हों, जो प्रभु **उत्तमं ज्योतिः**=सर्वोत्तम ज्योति हैं और **देवत्रा देवम्**=देवों में भी देव हैं, सर्वोत्तम देव—महादेव हैं।

**भावार्थ**—हम पाप से ऊपर उठकर, उत्तम स्वर्ग में आरोहण करते हुए, देवों में भी देव, उत्तम ज्योति, सर्वप्रेरक प्रभु को प्राप्त करें।

## ५४. [ चतुःपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ऋक्सामनि** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## विद्या+श्रद्धा

**ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।**
**एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः॥ १॥**

१. 'ऋक्' विज्ञान का प्रतीक है, 'साम' उपासना (श्रद्धा) व शान्ति का प्रतीक है। ऋक् का स्थान 'मस्तिष्क' है, साम का 'हृदय। हम अपने जीवनों में **ऋचं साम**=विज्ञान व श्रद्धा को, मस्तिष्क व हृदय को **यजामहे**=संगत कर देते हैं। हमारे जीवनरूप धनुष् का एक सिरा 'ऋक्' (विज्ञान) है और दूसरा 'साम' 'उपासना' है। ये ही वे दो तत्त्व हैं **याभ्याम्**=जिनसे कि **कर्माणि कुर्वते**=सब कर्मों को किया करते हैं। विद्या व श्रद्धा से किये जानेवाले कर्म ही वीर्यवत्तर हुआ करते हैं। २. **एते**=मिले हुए ये ऋक् और साम, विद्या और श्रद्धा ही **सदसि राजतः**=सभा में शोभायमान होते हैं। सभा में प्रतिष्ठा 'श्रद्धावान् ज्ञानी' की होती है, केवल श्रद्धालु की नहीं, केवल ज्ञानी की नहीं। ये ऋक् और साम **देवेषु**=देववृत्ति के विद्वानों में **यज्ञं यच्छतः**=यज्ञ को देते हैं। विज्ञान और श्रद्धा होने पर ही देव यज्ञशील बनते हैं।

**भावार्थ**—श्रद्धा और विद्या के समन्वय से सृष्टि में उत्तम कर्म होते हैं। इनका मेल ही सभा में शोभा का कारण बनता है। इन दोनों के होने पर देव यज्ञशील बनते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## हविः, ओजः, बलम्

**ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्।**
**एष मा तस्मान्मा हिंसीद्वेदः पृष्टः शचीपते॥ २॥**

१. **यत्**=जब मैं **ऋचं हविः अप्राक्षम्**=(ऋग्वेद=विज्ञानवेद) इस विज्ञानवेद से हवि माँगता हूँ (**प्र**=ह्वेञ् ask for), अर्थात् विज्ञान के द्वारा हव्य (पवित्र) पदार्थों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ और जब **साम ओजः अप्राक्षम्**=(सामवेद=उपसनावेद) प्रभु की उपासना से ओजस्विता की प्रार्थना करता हूँ, अर्थात् प्रभु की उपासना से—प्रभु के ओज से ओजस्वी बनता हूँ और इसी प्रकार **यजुः बलम्**= (यजुर्वेद=कर्मवेद) श्रेष्ठतम कर्मों से बल की प्रार्थना करता हूँ, अर्थात् उत्तम कर्मों को करता हुआ बलवान् बनता हूँ। २. **तस्मात्**=उस कारण से हे **शचीपते**=शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामिन् प्रभो! **एषः**=यह **पृष्टः वेदः**=इसप्रकार पूछा हुआ, प्रार्थना किया हुआ वेद **मा**=मुझे **मा हिंसीत्**=मत हिंसित करे।

**भावार्थ**—यदि हम ऋग्वेद के विज्ञान से हव्य पदार्थों को निर्मित करें, साम द्वारा प्रभु की उपासना से ओजस्वी बनें तथा यजुर्वेद में निर्दिष्ट श्रेष्ठतम कर्म करते हुए सबल बनें तो वेद हमें हिंसित होने से बचाते हैं।

इस मन्त्र के अनुसार 'ऋक्, यजु, साम' से अपने को परिपक्व बनाता हुआ यह 'भृगु' (भ्रस्ज् पाके) बनता है। यह 'भृगु' ही अगले सूक्त का ऋषि है।

## ५५. [ पञ्चपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**विराट्परोष्णिक्**॥

## दिवः पन्थानः

**ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः। तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो॥ १॥**

१. हे **वसो**=सबको उत्तम निवास देने व सबमें बसनेवाले प्रभो! **ये**=जो **ते**=आपके **दिवः पन्थानः**=प्रकाश के मार्ग हैं, देवयान मार्ग हैं, **येभिः**=जिन मार्गों से आप **विश्वम् अव ऐरयः**=सम्पूर्ण विश्व को यहाँ नीचे (पृथिवी पर) प्रेरित करते हैं, **तेभिः**=उन मार्गों से **नः**=हमें **सुम्नया धेहि**=सुख में स्थापित कीजिए।

**भावार्थ**—हम प्रभु-निर्दिष्ट प्रकाश-मार्गों में चलते हुए सुख प्राप्त करें।

इन प्रकाशमार्गों से विचलित न होनेवाला 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है—

## ५६. [ षट्पञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चिकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### ( मधू ) 'मधुका' सर्पविषनाशनी

**तिरश्चिराजेरसितात्पृदाकोः परि संभृतम्। तत्कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत्॥ १॥**
**इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः। सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी॥ २॥**

१. **तिरश्चिराजेः**=(तिरश्च्य राजयो यस्य) तिर्यग्भूत रेखाओंवाले, **असितात्**=कृष्णवर्ण के, **पृदाकोः**=(पर्द कुत्सिते शब्दे) कुत्सित शब्द करनेवाले सर्प से **परिसंभृतम्**=जो शरीर में चारों ओर व्याप्त हुआ है तथा **कंकपर्वणः**=कंकपक्षी के समान जोड़ोंवाले सर्प से **विषम्**=विष सम्भृत हुआ है, **तत्**=उस विष को **इयम्**=यह **वीरुत्**=विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त होती हुई मधुकाख्या ओषधि **अनीनशत्**=नष्ट करे। २. **इयं वीरुत्**=यह सर्पविष में प्रयुज्यमान ओषधि **मधुजाता**=मधु से निष्पन्न हुई है। **मधुश्चुत्**=मधुर रस स्राविणी है। **मधुला**=मधुमती, **मधुः**=मधू नामवाली है। **सा**=वह विह्रुतस्य **भेषजी**=विशेषरूप से कुटिलता को उत्पन्न करनेवाले विष की औषध है **अथो**=और निश्चय से **मशकजम्भनी**=दंशक मशकों को हिंसित करनेवाली है।

**भावार्थ**—विविध प्रकार के सर्पविष के प्रभावों को यह 'मधू' (मधुला) नामक ओषधि दूर करनेवाली है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### सर्पविष-निराकरण

**यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि।**
**अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम्॥ ३॥**

१. विष-दष्ट पुरुष को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि **यतः दष्टम्**=जिस स्थान में सर्पादि से डसा गया है, **यतः धीतम्**=जिस स्थान में सर्पादि से रुधिर पिया गया है। हे सर्पदष्ट पुरुष! **तत्**=वहाँ से **ते**=तेरे इस विष को **निर्ह्वयामसि**=पुकार कर बाहर करते हैं। २. इस **अर्भस्य**=छोटे से **तृप्रदंशिनः**=शीघ्रता से काटनेवाले व तीव्रता से काटनेवाले **मशकस्य**=मच्छर का **विषं अरसम्**=विष तो निर्वीर्य ही है (शृंगारादौ रसे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः) इस विष को दूर करना कठिन है ही नहीं।

**भावार्थ**—जहाँ सर्प काटता है और रुधिर पीता है, उस अंग से हम विष को पुकार कर बाहर करते हैं। इस छोटे-से तीव्रता से काटनेवाले मच्छर का विष तो निर्वीर्य ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मणस्पतिः ( विषभैषज्यम् )**॥ छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

### विषजनित वक्रता का निरास

**अयं यो वक्रो विपरुर्व्य ङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि।**
**तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः॥ ४॥**

१. **अयम्**=यह **यः**=जो सर्पदष्ट पुरुष **वक्रः**=कुटिल अवयवोंवाला (संकोचित अवयवोंवाला) **विपरुः**=विश्लिष्ट पर्वोंवाला (विगतसन्धि) **व्यंगः**=विकृत अंगोंवाला होता हुआ **मुखानि**=मुख आदि अंगों को **वक्रा**=कुटिल व **वृजिना**=अनवस्थित-मुड़ा-तुड़ा हुआ, **कृणोषि**=करता है, हे **ब्रह्मणस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् वैद्य! **तानि**=उन अंगों को तू इसप्रकार **संनमः**=सन्नत कर, सीधा कर **इव**=जैसेकि **इषीकाम्**=एक ऋजु व दीर्घ इषीका को, बलपूर्वक कुटिल की हुई को, उसकी

कुटिलता को दूर करके सरल कर देते हैं। इसी प्रकार इस सरलांग पुरुष को, विष के कारण जिसमें कुछ कुटिलता आ गई है, विषनिर्हरण द्वारा फिर यथावस्थित अंगोंवाला कर दे।

**भावार्थ**—विष के प्रभाव से अंगो में उत्पन्न कुटिलता व वक्रता को विष-दूरीकरण द्वारा एक सद्वैद्य दूर करके अंगों को पुनः सरलता प्राप्त कराए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चिकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## शर्कोट हिंसन

**अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः।**
**विषं ह्या१स्यादिष्यथो एनमजीजभम्॥ ५॥**

१. इस **अरसस्य**=निर्वीर्य, विषसामर्थ्यरहित **नीचीनस्य**=न्यग्भूत अवाङ्मुख—नीचे किये हुए मुखवाले, **उपसर्पतः**=समीप आते हुए **अस्य**=इस **शर्कोटस्य**=शर्कोट नामक (हिंसन द्वारा कुटिलता पैदा करनेवाले) सर्प के **विषम्**=विष को **हि**=निश्चय से **आ अदिषि**=खण्डित करता हूँ, विष को नष्ट करता हूँ **अथो**=और **एनम्**=इस विषवाले शर्कोट सर्प को भी **अजीजभम्**=मैंने हिंसित किया है।

**भावार्थ**—शर्कोट नामक विषैले प्राणी के विष को नष्ट करके उस विषैले प्राणी को भी मार देना चाहिए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चिकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## पुच्छदंशी वृश्चिक

**न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः।**
**अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम्॥ ६॥**

१. हे पुच्छ से डसनेवाले वृश्चिक! **ते बाह्वोः बलं न अस्ति**=तेरी भुजाओं में बल नहीं है। **न शीर्षे**=न सिर में बल है, **उत**=और **न मध्यतः**=तेरे मध्यभाग (उदर) में भी बल नहीं है। **अथ**=अब **किम्**=क्यों **अमुय पापया**=इस पापिष्ठ, पर-पीड़ाकारिणी बुद्धि से **अर्भकम्**=इस अत्यल्प विष को **पुच्छे बिभर्षि**=पूँछ में धारण किये हुए है। तू तो व्यर्थ में ही पर-पीड़ा करने का यत्न करता है।

**भावार्थ**—बिच्छू व्यर्थ में पर-पीड़ाकारी विष को पूछँ में धारण करता है। इसी प्रकार कई मनुष्य भी सामने नहीं अपितु पीठ पीछे कुछ निन्दा करते रहते हैं, वे वृश्चिक के समान ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चिकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## पिपीलिकाः, मयूर्यः

**अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः।**
**सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम्॥ ७॥**

१. हे सर्प! **त्वा पिपीलिकाः अदन्ति**=तुझे चीटियाँ खा जाती हैं। **मयूर्यः**=मोरनियाँ **विवृश्चन्ति**=विशेषरूप से छिन्न कर डालती हैं। **सर्वे**=सब सर्प-विषनिर्हरणक्षम पुरुष **भल ब्रवाथ**=(भल साध्वर्थवाची) ठीक ही कहते हैं कि **शार्कोटं विषम्**=शर्कोट नामक सर्प का विष **अरसम्**=निर्वीर्य है, इसका दूर करना कुछ कठिन नहीं।

**भावार्थ**—शर्कोट नामक सर्प को तो चीटियाँ व मोरनियाँ भी खा जाती हैं। 'इसका विष वस्तुतः निर्वीय ही है', यह सब ठीक ही कहते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वृश्चिकादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## पुच्छेन च आस्येन च

**य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्ये ∫ न च।**
**आस्येऽ३ न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत्॥ ८॥**

१. हे वृश्चिक! **यः**=जो तू **उभाभ्यां पुच्छेन च आस्येन च**=पूँछ और मुख दोनों से **प्रहरसि**=प्रहार करता है, अतः **ते आस्ये**=तेरे मुख में तो **विषं न**=विष नहीं है, **किम् उ**=और क्या **ते**=तेरे इस **पुच्छधौ**=छोटी पूँछ ही में **असत्**=होता है, अर्थात् तेरा विष किसी को क्या मार सकता है? अतः व्यर्थ में तू डसता ही क्यों है?

**भावार्थ**—बिच्छू के मुख में तो विष होता ही नहीं, पुच्छधि में होनेवाला विष भी सरलता से ही चिकित्स्य है।

'गत सूक्त के सर्प व वृश्चिक की भाँति मुझे औरों को डसनेवाला नही बनना' इस भावना से जीवन का निर्माण करनेवाला यह साधक 'वामदेव' बनता है, वाम सुन्दर दिव्य गुणोंवाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ५७. [ सप्तपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**वामदेवः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**जगती**॥

## वामदेव का अपमान-सहन

**यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद्याचमानस्य चरतो जनाँ अनु।**
**यदात्मनि तन्वो ∫ मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन॥ १॥**

१. जिस समय एक ब्राह्मण (संन्यासी) जनता में प्रचार करता है, तब कई बार कुछ लोकप्रवाद भी सुनने ही पड़ते हैं, अतः यह प्रार्थना करता है कि **यत्**=जब **वदतः**=जनता में प्रवचन करते हुए **आशसा**=लोगों द्वारा हिंसन से **मे विचुक्षुभे**=मेरा मन कुछ विक्षुब्ध हो उठता है, और **यत्**=जो **जनान् अनुचरतः**=लोगों के प्रति जाते हुए और **याचमानस्य**=किन्ही कार्यविशेषों के लिए इनसे प्रार्थना करते हुए उनके न समझने से मेरा मन कुछ क्षुब्ध-सा होता है, और **यत्**=जो **मे तन्वः विरिष्टम्**=मेरे शरीर का हिंसन होता है, ये कुछ ईंट-रोड़े बरसा देते हैं, **तत्**=उस सबको **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **घृतेन आपृणत्**=ज्ञानदीप्ति व मलक्षरण द्वारा पूरित कर दे और मुझे **आत्मनि**=(स्थापयतु इति शेषः) स्वभाव में—क्षोभराहित्य स्थिति में—स्थापित करे। २. ज्ञानी पुरुष लोगों में ज्ञान का प्रचार करेगा व उन्हें किन्ही कर्मों से रोकेगा तो कुछ विरोधी लोग भी उपस्थित होंगे ही। वे कुछ-न-कुछ हिंसन करेंगे ही, अपमानजनक शब्द भी बोलेंगे, चोट मारने का भी यत्न करेंगे। उस समय यह ज्ञानी पुरुष चाहता है कि ज्ञान उसे क्षुब्ध होने से बचाये। ज्ञान के कारण वह स्वस्थ स्थिति में रह सके।

**भावार्थ**—ज्ञानी पुरुष जब ज्ञान का प्रचार करते हैं, तब विरोधी लोग अपशब्द भी बोलते हैं, प्रहार भी करते हैं। ज्ञानी को चाहिए कि इन्हें सहन करता हुआ अपने कर्त्तव्य-कर्म में लगा रहे।

ऋषिः—**वामदेवः**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**जगती**॥

## शिशु मरुत्वान् पुत्र

**सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि।**
**उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः॥ २॥**

१. **शिशवे**=(शो तनूकरणे) बुद्धि को तीव्र बनानेवाले अथवा काम, क्रोध आदि शत्रुओं

का शासन करनेवाले **मरुत्वते**=प्राणसाधक के लिए (मरुतः प्राणाः) **सप्त क्षरन्ति**=सात छन्दों से युक्त वेदवाणियाँ प्रवाहित होती हैं। हम प्राणसाधना करते हुए काम, क्रोध आदि के विनाश से बुद्धि को तीव्र बना पाएँगे तो इन ज्ञान की वाणियों को क्यों न प्राप्त करेंगे? **अपि**=और ये **पुत्रासः** (पुनाति त्रायते)=ज्ञान की वाणियों के द्वारा अपने को पवित्र करनेवाले तथा अपना त्राण (रक्षण) करनेवाले लोग **पित्रे**=उस पिता प्रभु की प्राप्ति के लिए **ऋतानि अवीवृतन्**=सत्यभूत यज्ञादिरूप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। २. इस **अस्य**='मरुत्वान् शिशु, ऋत के वर्तनवाले पुत्र' के **इत् उभे**=निश्चय से दोनों ही लोक उत्तम होते हैं। यह इहलोक के अभ्युदय और परलोक के निःश्रेयस को प्राप्त करता है। **अस्य**=इसके **उभे**=दोनों द्यावापृथिवी—मस्तिष्क व शरीर **राजतः**=ज्ञान व शक्ति से दीप्त होते हैं। **उभे यतेते**=इसके दोनों इन्द्रियगण (ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ) यत्नशील होती हैं, परिणामतः **अस्य**=इसके **उभे पुष्यतः**=ब्रह्म और क्षत्र दोनों पुष्ट होते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ निरन्तर ज्ञान में लगी रहकर इसके ज्ञान का वर्धन करती हैं तथा कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहकर इसे सशक्त बनाये रखती हैं।

**भावार्थ**—हम बुद्धि को तीव्र करें (शिशु) प्राणसाधना में प्रवृत्त हों (मरुत्वान्) तथा अपने को पवित्र व रक्षित करें (पुत्र)। इसप्रकार हमें वेद ज्ञान प्राप्त होगा तथा ऋत् का पालन करते हुए हम पिता प्रभु को प्राप्त करेंगे तथा हमारे जीवन में 'ब्रह्म और क्षत्र' का समन्वय होगा।

ज्ञान के अनुसार कर्म करनेवाला 'कौरुपथि' अगले सूक्त का ऋषि है—

## ५८. [ अष्टपञ्चाशं सूक्तम् ]

ऋषिः—**कौरुपथिः**॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### 'सुतपौ धृतव्रतौ' इन्द्रावरुणा

**इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ।**
**युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये॥ १॥**

१. 'इन्द्र' जितेन्द्रिय पुरुष का वाचक है तथा 'वरुण' वासनाओं का निवारण करनेवाले का संकेत करता है। हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रिय व वासना का निवारण करनेवाले पुरुषो! आप **सुतपौ**=शरीर में उत्पन्न सोम का पान करनेवाले हो अथवा (सु-तपौ) उत्तम तपवाले हो। **इमं सुतं सोमम्**=इस शरीर में उत्पन्न सोम को **पिबतम्**=पीओ, इसे शरीर में ही व्याप्त करो। हे **धृतव्रतौ**=व्रतों का धारण करनेवाले इन्द्र और वरुण! **मद्यम्**=शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम मद का, हर्ष का जनक है। २. हे इन्द्रावरुणा! **युवोः**=आप दोनों का **रथः**=यह शरीर-रथ **अध्वरः**=हिंसा से रहित व शत्रुओं से अपराजित है अथवा (अध्व-र) मार्ग पर आगे बढ़नेवाला है। यह **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **प्रतिस्वसरम्**=प्रतिदिन (नि० १.९) **पीतये**=सोम के पान के लिए **उपयातु**=प्रभु के समीप जानेवाला हो। प्रातः-सायं प्रभु की उपासना में प्रवृत्त होना 'सोमरक्षण' में सहायक होता है।

**भावार्थ**—हम जितेन्द्रिय व वासनाओं का निवारण करनेवाले बनकर शरीर में सोम का रक्षण करें। इस शरीर-रथ को मार्ग पर आगे-और-आगे ले-चलें। प्रभु-उपासना में प्रवृत्त होकर सोमरक्षण का ध्यान करें।

ऋषिः—**कौरुपथिः**॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### 'मधुमत्तम' सोम

**इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।**
**इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम्॥ २॥**

१. हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रिय व वासनाओं का निवारण करनेवाले पुरुषो! आप इस **मधुमत्तस्य**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाले **वृष्णः**=शक्तिशाली **सोमस्य**=सोम का **वृषेथाम्**=शरीर में ही सेचन करो। आप **वृषणा**=सोमरक्षण द्वारा शक्तिशाली बनते हो। २. **इदम्**=यह सोम **वाम् अन्धः**=आपका भोजन है, **परिषिक्तम्**=यह शरीर में चारों ओर सिक्त हुआ है। अब आप **अस्मिन्**=इस **बर्हिषि**=(बृह् उद्यमने) जिसमें से वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है, उस हृदय में **आसद्य**=आसीन होकर, अर्थात् पवित्र हृदय में प्रभु का ध्यान करते हुए **मादयेथाम्**=आनन्दित होवो।

**भावार्थ**—इन्द्र और वरुण इस मधुमत्तम सोम का पान करते हुए शक्तिशाली बनते हैं। यह सोम उनका भोजन हो जाता है। इसी दृष्टि से वे पवित्र हृदय में प्रभु का प्रातः-सायं ध्यान करते हैं।

सोमरक्षण द्वारा यह 'बादरायणि' बनता है, (बद to be steady or firm) —अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलनेवाला। यह बादरायणि औरों के आक्रोश की चिन्ता न करता हुआ मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ५९. [ एकोनषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**बादरायणिः**॥ देवता—**अरिनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### आक्रोश का विनाश

**यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।**
**वृक्षइव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु॥ १॥**

१. **यः**=जो **अशपतः नः शपात्**=आक्रोश न करते हुए भी हमारे प्रति आक्रोश करे, **च यः**=और जो **शपतः नः**=(to swear, to take an oath) शपथ खाते हुए हमें, शपथपूर्वक यह कहते हुए भी कि हमने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा नहीं, **शपात्**=गाली दे, वह **आमूलात्**=जड़ से इसप्रकार **अनुशुष्यतु**=सूख जाए, **इव**=जैसेकि **विद्युता हतः वृक्षः**=विद्युत् से मारा हुआ वृक्ष सूख जाता है।

**भावार्थ**—हम किसी के लिए अपशब्दों का प्रयोग न करें। अपशब्दों का प्रयोक्ता जड़ से ही सूख जाता है।

हम आक्रोशों की परवाह न करते हुए मार्ग पर आगे बढ़ते चलें। यह मार्ग पर बढ़नेवाला व्यक्ति ही 'ब्रह्मा'=बड़ा बनता है। अगले सूक्त का ऋषि यही है—

**॥ इति षोडशः प्रपाठकः॥**

**अथ सप्तदशः प्रपाठकः**

## ६०. [ षष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**परानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

### आदर्श पति

**ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।**
**गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥ १॥**

१. 'घर में पति का आदर्श क्या है?' इसका चित्रण करते हुए पति के मुख से ही कहलाते हैं कि **ऊर्जं बिभ्रत्**=बल और प्राणशक्ति को धारण करता हुआ **वसुवनिः**=धन का विजय (उपार्जन) करनेवाला, **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धिवाला, **अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा**=अभयानक—स्नेहभरी दृष्टि से युक्त हुआ-हुआ मैं **गृहान् ऐमि**=(आ एमि) घर के लोगों को प्राप्त करता

हूँ। २. मैं **सुमनाः**=प्रशस्त (प्रसन्न) मनवाला **वन्दमानः**=अभिवादन व स्तुति करता हुआ आता हूँ। **रमध्वम्**=तुम प्रसन्न होवो। **मा बिभीत मत्**=मुझसे भयभीत न होवो। घर में पिता के आने पर घरवालों को प्रसन्नता का अनुभव हो। उनके कठोर स्वभाव के कारण घरवाले भयभीत न हों और अप्रसन्नता का अनुभव न करें।

**भावार्थ**—आदर्श गृहस्थ वह है जिसका शरीर प्राणशक्ति-सम्पन्न है, जो धन का अर्जन करनेवाला है, प्रेमभरी दृष्टि से युक्त है, प्रशस्त मनवाला व प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## 'उर्जस्वन्तः पयस्वन्तः' गृहाः

**इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।**
**पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः॥ २॥**

१. **इमे गृहाः**=ये घर **मयोभुवः**=सुख उत्पन्न करनेवाले (भावयितारः) हैं, **ऊर्जस्वन्तः**=अन्न रसवाले हैं, **पयस्वन्तः**=क्षीरादि से समृद्ध हैं। **वामेन**=सेवनीय धन से **पूर्णाः**=सम्पूर्ण व समृद्ध होकर **तिष्ठन्तः**=स्थिर होते हुए **ते**=वे गृहजन घर पर **आयतः नः जानन्तु**=प्रवास से लौटे हुए हमें जानें। प्रवास से लौटे हुए पति का सब घरवाले उचित सत्कार करें।

**भावार्थ**—घर सुखी, अन्न-रसयुक्त, क्षीरादी-सम्पन्न व सेवनीय धन से पूर्ण हों। प्रवास से लौटने पर सब घरवाले गृह-स्वामी का स्वागत करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## येषु सौमनसः बहुः

**येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः।**
**गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः॥ ३॥**

१. जब घर सुन्दर होता है तब प्रवास में घर की याद आती ही है। **प्रवसन्**=देशान्तर में बसता हुआ पुरुष **येषां अध्येति**=जिनका स्मरण करता है, **येषु**=जिनमें **बहुः सौमनसः**=बहुत सौमनस्य है— जिनमें रहनेवाले मनुष्य प्रसन्न मनवाले हैं, उन **गृहान्**=घरों को **उपह्वयामहे**=प्राप्त करने के लिए हम प्रार्थना करते हैं। **ते**=वे घर **आयतः नः**=प्रवास से लौटे हुए हमें **जानन्तु**=जानें, घर के लोग प्रसन्नता से हमारा स्वागत करें।

**भावार्थ**—हमारा घर व घर के लोग ऐसे अच्छे हों कि हमें प्रवास में घर का ही स्मरण हो। ऐसे घरों में जब हम लौटें तब घरवाले प्रसन्नता से हमारा स्वागत करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## 'भूरिधनाः स्वादुसंमुदः' गृहाः

**उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः।**
**अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ४॥**

१. **भूरिधनाः**=पालक व पोषक धन से युक्त **गृहाः**=घर **उपहूताः**=हमारे द्वारा प्रार्थित हुए हैं। प्रभु हमें ऐसे घरों को प्राप्त कराएँ जहाँ कि आवश्यक धन की कमी न हो, **सखायः**=जिस घर में रहनेवाले लोग परस्पर मित्रभाववाले हों (सखे सप्तपदी भव), **स्वादुसंमुदः**=ये घर स्वादिष्ट पदार्थों से प्रसन्नता को प्राप्त करानेवाले हों। **अक्षुध्याः अतृष्याः स्त**=हे गृहो! आप भूखे और प्यासे ही न रह जाओ, अर्थात् घरों में खान-पान की कमी न हो। हे **गृहाः**=घर के लोगो! **अस्मत् मा बिभीतन**=हमसे भयभीत मत होवो, अर्थात् गृहपति का स्वभाव ऐसा मधुर हो कि

उसके आने पर सब प्रसन्नता का अनुभव करें।

**भावार्थ**—हम उन घरों के लिए प्रार्थना करते हैं जो पर्याप्त धनवाले हैं, जहाँ लोग परस्पर मित्रभाव से रहते हैं, जहाँ स्वादिष्ट पदार्थ हर्ष का कारण बनते हैं, जहाँ लोग न भूखे हैं न प्यासे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## गौ, अजा, अवि व कीलाल अन्न

**उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।**
**अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥ ५॥**

१. **इह**=यहाँ घर में **गावः उपहूताः**=गौवों के लिए प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार **अजावयः उपहूताः**=भेड़ और बकरियों के लिए प्रार्थना की गई है **अथो**=और **अन्नस्य कीलालः**=अन्न का सारभूत अंश, अर्थात् उत्कृष्ट सात्त्विक अन्न **नः गृहेषु**=हमारे घरों में **उपहूतः**=प्रार्थित हुआ है।

**भावार्थ**—हमारे घरों में गौवें, भेड़ें, बकरियाँ हों तथा इन घरों में अन्न के सारभूत अंश की, पौष्टिक अन्न की कमी न हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## 'सूनृतावन्तः सुभगाः' गृहाः

**सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।**
**अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ६॥**

१. हे **गृहाः**=गृह में रहनेवालो! तुम **सूनृतावन्तः स्त**=प्रिय, सत्य वाणीवाले होओ (प्रवसति यजमाने गृहे जातमप्यरिष्टं पुनरागच्छति गृहस्वामिनि तद्दिवसे न ज्ञापनीयम्) **सुभगाः**=तुम शोभन भाग्य से युक्त होओ **इरावन्तः**=(इरा अन्नं) प्रशस्त अन्नवाले **हसामुदाः**=हँसी के साथ प्रसन्न (मोदमान) होओ। हास से अभिव्यक्त सन्तोषवाले तुम होओ। २. **अतृष्याः अक्षुध्याः स्त**=भूखे प्यासे न रहो, तुम्हें खान-पान की कमी न हो। **गृहाः मा अस्मद् बिभीतन**=हे गृहो! हमसे भयभीत न होओ। गृहपति के मधुरस्वभाव से सबको प्रसन्नता ही हो।

**भावार्थ**—घर में प्रिय, सत्यवाणी, सौभाग्य, प्रशस्त अन्न व हास्य के साथ प्रमोद हो। यहाँ सब तृप्त हों तथा गृहपति का स्वभाव अत्यन्त मधुर हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**गृहाः, वास्तोष्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## भूतिसम्पन्न गृह (पति-पत्नी के कार्य का विभाग)

**इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत।**
**ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया॥ ७॥**

१. पति प्रवास में जाता हुआ घर के लोगों से कहता है कि **इह एव स्त**=तुम यहाँ—घर पर ही रहो, **मा अनुगात**=तुम मेरे पीछे जानेवाले मत होओ। यहाँ रहते हुए तुम **विश्वा रूपाणि पुष्यत**=सब सुरूप पुत्रों व गवादि पशुओं का पोषण करो। २. मैं **भद्रेण सह आ एष्यामि**=कल्याणकारक धन के साथ फिर यहाँ आऊँगा। उस समय **मया**=मेरे साथ **भूयांसः भवतः**=अधिक समृद्धि-(भूति)-वाले होओ।

**भावार्थ**—गृहपति कमाने के लिए बाहर जाता है। घरवालों को चाहिए कि घर में सबके पोषण का पूरा ध्यान करें। मङ्गलकारक धन के साथ लौटे हुए गृहपति के साथ वे भूतिसम्पन्न हों।

इस उत्तम घर में धर्म के मार्ग से विचलित न होनेवाला 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है—

## ६१. [ एकषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### तप+श्रुत

**यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः।**
**प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः॥ १॥**
**अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः।**
**श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः॥ २॥**

१. हे **अग्ने**=आचार्य (अग्निराचार्यस्तव) **तपसा** (मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं तप उच्यते)=मन व इन्द्रियों की एकाग्रता के साथ **तपः**=(तपः क्लेशसहिष्णुत्वम्) शीतोष्णादि का सहनरूप जो तप है, उस **तपः उपतप्यामहे**=तप को हम आपके समीप तपते हैं। इस तप से हम **श्रुतस्य प्रियाः भूयास्म**=ज्ञान के प्रिय बनें। इसप्रकार **आयुष्मन्तः**=प्रशस्त दीर्घजीवनवाले तथा **सुमधेसः**=उत्तम मेधावाले हों, उत्तम धारणा शक्तिवाले हों। २. हे **अग्ने**=आचार्य! **तपः तप्यामहे**=हम (कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत) शीतोष्णसहनरूप तप करते हैं। **तपःउपतप्यामहे**=आपके समीप रहते हुए तप करते हैं। **श्रुतानि शृण्वन्तः**=वेदज्ञानों को सुनते हुए **वयम्**=हम **आयुष्मन्तः**=प्रशस्त दीर्घजीवनवाले बनें तथा **सुमेधसः**=उत्तम मेधावाले, धारणाशक्तियुक्त हों।

**भावार्थ**—आचार्यों के समीप रहते हुए ब्रह्मचारी 'तपस्वी' हों। शास्त्रज्ञानों का श्रवण करते हुए वे प्रशस्त दीर्घजीवनवाले व सुमेधा बनें।

ज्ञानी बनकर यह कश्यप होता है, तत्त्व को देखनेवाला तथा वासनारूप शत्रुओं को मारनेवाला 'मरीचि' (मृ) बनता है। अगले दो सूक्तों का यही ऋषि है—

## ६२. [ द्विषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मरीचिः काश्यपः** ॥ देवता—**जातवेदाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

### काश्यप 'मरीचि' का जीवन

**अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत्पुरोहितः।**
**नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ते पृतन्यवः॥ १॥**

१. **अयम्**=यह कश्यप **अग्निः**=अग्रणी है, स्वयं उन्नति-पथ पर चलता हुआ औरों को भी उन्नति-पथ पर ले-चलता है। **सत्पतिः**=सज्जनों का रक्षक है। **वृद्धवृष्णः**=बढ़े हुए बलवाला है। शत्रुओं को इसप्रकार **अजयत्**=जीत लेता है, **इव**=जैसेकि **रथी पत्तीन्**=एक रथी पैदलों पर विजय पानेवाला होता है। यह शरीररूप रथ पर आरूढ़ हुआ-हुआ काम, क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करता है। **पुरोहितः**=यह औरों के सामने (पुरः) आदर्शरूप से स्थापित (हितः) होता है, इसका जीवन औरों के लिए आदर्श उपस्थित करता है। २. **पृथिव्याम् नाभा**=(अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः) यज्ञों में (पृथिवी के केन्द्रभूत यज्ञों में) **निहितः**=स्थापित होता है और **दविद्युतत्**=खूब ही चमकता है। यह यज्ञशील पुरुष उनको **अधस्पदं कृणुताम्**=पाँव तले रौंदनेवाला हो, **ते पृतन्यवः**=जो शत्रु इसके साथ संग्राम के इच्छुक होते हैं, उन शत्रुओं को मार डालने से ही तो यह 'मरीचि' कहलाता है।

**भावार्थ**—हम शत्रुओं को समाप्त करके 'मरीचि' बनें। ज्ञान की रुचिवाले, शक्तिसम्पन्न (वृद्धवृष्णः) व यज्ञशील बनें, तभी हमारा जीवन दीप्त व औरों के लिए आदर्श होगा।

## ६३. [ त्रिषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**मरीचिः काश्यपः** ॥ देवता—**जातवेदाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

### 'सर्वमहान्+मरीचि'=प्रभु

**पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात्सधस्थात्।**
**स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद्देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥**

१. **पृतनाजितम्**=सब संग्रामों को विजित करनेवाले, प्रभुकृपा से ही तो संग्रामों में विजय होती है। **सहमानम्**=शत्रुओं का मर्षण करनेवाले **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **उक्थैः**=स्तोत्रों से **परमात् सधस्थात्**=सर्वोत्कृष्ट सहस्थान (हृदय) से **हवामहे**=पुकारते हैं। जीवात्मा व परमात्मा का मिलकर रहने का स्थान हृदय ही है। हृदयदेश से ही प्रभु का आह्वान होता है। ये प्रभु ही पुकारे जाने पर हमारे शत्रुओं का संहार करते हैं। २. **सः**=वे प्रभु **नः**=हमें **विश्वा दुर्गाणि**=सब कठिनताओं से **अतिपर्षत्**=पार करें। वह **देवः**=प्रकाशमय **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **दुरितानि**=सब अशुभ आचरणों को **अति क्षामत्**=(क्षै क्षये) नष्ट कर दें।

**भावार्थ**—वे अग्रणी प्रभु हमें सब संग्रामों में विजयी बनाएँ। वे हमें दुर्गों=कठिनाइयों से पार करें तथा हमारे दुरितों को विनष्ट करें।

सब दुरितों को दूर करके यह अपने जीवन को बड़ा संयत करता है। संयत करनेवाला यह 'यम' है। यम ही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ६४. [ चतुःषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**१ आपः, २ अग्निः** ॥ छन्दः—**१ भुरिगनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणीबृहती** ॥

### कृष्णः शकुनिः

**इदं यत्कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत्।**
**आपो मा तस्मात्सर्वस्माद्दुरितात्पान्त्वंहसः ॥ १ ॥**
**इदं यत्कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन।**
**अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥ २ ॥**

१. **इदं यत्**=यह जो **कृष्णः**=काली (मलिन) अथवा मन को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली **शकुनिः**=शक्तिशालिनी पाप-वासना **अभिनिष्पतन्**=चारों ओर से बड़े वेग से हमपर आक्रमण करती हुई **अपीपतत्**=हमें गिराती है (काम-वासना 'प्रद्युम्न है—प्रकृष्ट बलवाली है')। इस वासना में फँसकर मनुष्य पापमय जीवनवाला हो जाता है, यह काम 'महापाप्मा' तो है ही। **तस्मात् सर्वस्मात् दुरितात्**=उस सब दुरित से **अहंसः**=कष्ट के कारणभूत पाप से **मा**=मुझे **आपः पान्तु**=वे व्यापक प्रभु रक्षित करें। प्रभुस्मरण इस वासना के संहार का सर्वोत्तम साधन है। २. हे **निर्ऋते**=आत्मा को नीचे ले-जानेवाली पापप्रवृत्ते! **इदं यत्**=यह जो **कृष्णः शकुनिः**=मलिन तथा प्रबल पाप-वासना **ते मुखेन**=तेरे (निर्ऋति के) मुख से—तेरे द्वारा **अवामृक्षत्** (मृक्ष् संघाते)=नीचे विनष्ट करती—गिराती है। **तस्मात् एनसः**=उस पाप से **मा**=मुझे **गार्हपत्यः अग्निः**=यह शरीर-गृह का पति, आत्मा का हितकारी, अग्रणी प्रभु **प्रमुञ्चतु**=मुक्त करे। प्रभु का स्मरण पाप से मुक्त करता ही है। ये प्रभु गार्हपत्य अग्नि हैं—अग्रणी हैं और शरीर-गृह के पति जीव का सदा हित करनेवाले हैं।

**भावार्थ**—कामवासना मलिन होती हुई अति प्रबल है। यह हमें नीचे गिरानेवाली है। हम

उस सर्वव्यापक (आपः) अग्रणी (अग्नि) प्रभु का स्मरण करते हुए इस वासना का विनाश करें।

पाप को नष्ट करके शुद्ध जीवनवाला यह व्यक्ति 'शुक्र' नामवाला होता है, शुचितावाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ६५. [ पञ्चषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### प्रतीचीनफलः

**प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ।**
**सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥ १ ॥**

१. हे **अपामार्ग**=सब दोषों को दूर करके हमारे जीवनों को शुद्ध करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **प्रतीचीनफलः**=प्रत्यक्ष, साक्षात् होकर ही (ञिफला विशरणे) पापों को विशीर्ण करनेवाले हैं। जिसके हृदय में आपका साक्षात्कार होता है, आप उसके पापों को नष्ट कर देते हैं। आप **रुरोहिथ**=हृदय देश में प्रादुर्भूत होते हैं। (रुह् प्रादुर्भावे)। आप **सर्वान्**=सब **शपथान्**=आक्रोशों को, अपशब्दों को **इतः मत्**=यहाँ मुझसे **वरीयः** (उरुतरं अत्यर्थम्)=बहुत दूर **यावयाः**=पृथक् कर दीजिए।

**भावार्थ**—प्रभु अपामार्ग है, हमारे जीवनों का शोधन करनेवाला है। शोधन होता तभी है, जब हृदय-देश में प्रभु का साक्षात्कार हो। यह साक्षात्कार हमारे जीवन से सब आक्रोशों को दूर फेंक देता है। उपासक कभी अपशब्द नहीं बोलता।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### प्रभु-स्मरण से तामस् व राजस् वृत्तियों का निराकरण

**यद्दुष्कृतं यच्छमलं यद्वा चेरिम पापया।**
**त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥ २ ॥**
**श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम।**
**अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ३ ॥**

१. **यत् दुष्कृतम्**=जिस दुष्कृत, अशुभ कर्म को हम **चेरिम**=कर बैठते हैं, **यत् शमलम्**=जिस मलिन कलंकजनक घृणित कार्य को कर बैठते हैं, **यत् वा**=अथवा जिस भी अशुभ कर्म को **पापया**=अशुभ (पापमयी) वृत्ति से कर डालते हैं, हे **विश्वेतोमुख**=सब ओर मुखोंवाले, सर्वद्रष्टः! **अपामार्ग**=हमारे जीवनों के शोधक प्रभो! **त्वया**=आपके द्वारा, आपके स्मरण से हम **तत् अपमृज्महे**=उसे सुदूर विनष्ट करते हैं। २. **यत्**=जो **श्यावदता**=काले (मलिन) दाँतोंवाले **कुनखिना**=कुत्सित नखोंवाले **बण्डेन सह** (वडि विभाजने)=भग्नांग व फूट डालनेवाले, चुगलखोर पुरुष के साथ **आसिम**=हम बैठें और उससे प्रभावित हो कुछ ऐसे ही बनने लगें तो हे **अपामार्ग**=हमारे जीवनों के शोधक प्रभो! **वयम्**=हम **सर्वं तत्**=उस अशुभवृत्ति को **त्वया**=आपके स्मरण से **अपमृज्महे**=अपने से दूर करते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु-स्मरण से सब दुष्कृत, पाप व अशुभवृत्तियाँ दूर हो जाती हैं। मैले-कुचैले—तमोगुणी पुरुषों के साथ अथवा फूट डालनेवाले, चुगली करनेवाले तमोगुणी पुरुषों के संग में आ जानेवाले दोषों को हम प्रभु की उपासना के द्वारा दूर कर सकते हैं।

सब पापों से रहित यह श्रेष्ठ सत्त्वगुणवाला पुरुष 'ब्रह्मा' बनता है। अगले दो सूक्तों का ऋषि यही है—

## ६६. [ षट्षष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्राह्मणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### पशवः ब्राह्मणं अश्रवन्

**यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु।**
**यदस्रवन्पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु॥ १॥**

१. **यदि**=यदि **अन्तरिक्षे**=इस विशाल अन्तरिक्ष में **ब्राह्मणम्**=ब्रह्मज्ञान **आस**=है। अन्तरिक्ष अपने सब लोक-लोकान्तरों द्वारा प्रभु के स्वरूप का ज्ञान करा रहा है, **यदि वाते**=अथवा निरन्तर बहनेवाले वायु में जो ब्रह्मज्ञान है, यदि **वृक्षेषु**=यदि वृक्षों की रचना में जो प्रभु की महिमा का प्रादुर्भाव हो रहा है, **यदि वा उलपेषु**=अथवा इन कोमल तृणों में भी ब्रह्म की महिमा दिख रही है। अन्तरिक्ष के अनन्त लोक-लोकान्तर तो प्रभु की महिमा का प्रकाश कर ही रहे हैं, वायु भी किस प्रकार जीवन का आधार बनती है? वृक्षों के मूल में डाला हुआ पानी किस प्रकार शिखर तक पहुँचता है? कुशा घास में शरीर के सब मलों के संहार की क्या अद्भुत शक्ति है? २. इन सबसे **उद्यमानम्**=उच्चारण किये जाते हुए **यत्**=जिस ब्रह्मज्ञान को **पशवः**=(पश्यन्ति इति) तत्त्वद्रष्टा पुरुष ही **अश्रवन्**=सुन पाते हैं, **तत् (ब्राह्मणम्)**=वह ब्रह्मज्ञान **पुनः**=फिर **अस्मान् उपैतु**=हमें प्राप्त हो। हम भी इन अन्तरिक्ष आदि से उच्चारित होते हुए ब्रह्मज्ञान को सुननेवाले बनें।

**भावार्थ**—अन्तरिक्ष, वायु, वृक्ष व पत्थरों में सर्वत्र प्रभुमहिमा का प्रादुर्भाव हो रहा है। इस उच्चरित होती हुई महिमा को तत्त्वद्रष्टा पुरुष ही सुना करते हैं। यह ब्रह्मज्ञान हमें भी प्राप्त हो।

## ६७. [ सप्तषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरःपरोष्णिग्बृहती**॥

### घिष्ण्याः अग्नयः

**पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।**
**पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव॥ १॥**

१. **मा**=मुझे **इन्द्रियम्**=वीर्य व चक्षु आदि इन्द्रियाँ **पुनः**=फिर **एतु**=प्राप्त हों। **आत्मा**=मन **द्रविणम्**=धन **च ब्राह्मणम्**=और ब्रह्मज्ञान मुझे **पुनः**=फिर प्राप्त हो। **पुनः**=फिर **धिष्ण्याः अग्नयः**=(धिष्ण्य=House) शरीरगृह में रहनेवाली, अथवा (धिष्ण्य=Power Strength) शरीर को शक्तिसम्पन्न बनानेवाली अग्नियाँ **यथास्थाम**=अपने-अपने स्थान पर **इह एव कल्पयन्ताम्**=यहाँ शरीर में ही स्थित हुई-हुई हमें शक्तिशाली बनाएँ। २. प्राणाग्निहोत्रोपनिषत् में इन अग्नियों का वर्णन इसप्रकार है कि (क) सूर्यः (अग्निः) मूर्धनि तिष्ठति, (ख) दर्शनाग्निः (आहवनीयः भूत्वा) मुखे तिष्ठति, (ग) शारीरः अग्निः (दक्षिणाग्निः भूत्वा) हृदये तिष्ठति, कोष्ठाग्निः (गार्हपत्यो भूत्वा) नाभ्यां तिष्ठति, अर्थात् सूर्याग्नि मूर्धा में, दक्षिणाग्नि (आहवनीय) मुख में, शरीराग्नि (दिक्षिणाग्नि) हृदय में तथा कोष्ठाग्नि (गार्हपत्य) नाभि में स्थित है। ये सब अग्नियाँ अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करती हुई हमें शक्तिशाली बनाती हैं।

**भावार्थ**—हमें 'वीर्य, मन, द्रविण व ज्ञान' की पुनः प्राप्ति हो। शरीरस्थ सब अग्नियाँ अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करती हुई हमें शक्तिशाली बनाएँ।

इसप्रकार 'शरीर, मन, बुद्धि' के पूर्ण स्वास्थ्य से जीवन में शान्ति का विस्तार करनेवाला 'शन्ताति' अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## ६८. [ अष्टषष्टितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### सरस्वती के व्रतों में

**सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु।**
**जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥**

१. हे **सरस्वति देवि**=ज्ञान की अधिष्ठातृदेवि! (ज्ञान प्रवाह से, गुरु से शिष्य की ओर चलता है, अतः ज्ञान की अधिष्ठात्री 'सरस्वती' कहलाती है। यह प्रकाशमय होने से 'देवी' है) **ते व्रतेषु**=तेरे व्रतों में चलते हुए हम लोगों द्वारा **दिव्येषु धामसु**=दिव्य तेजों के निमित्त **आहुतम्**=पहले अग्निकुण्ड में आहुत किये गये यज्ञावशिष्ट **हव्यं जुषस्व**=हव्य का ही तू प्रीतिपूर्वक ग्रहण कर, अर्थात् तेरे व्रतों में चलते हुए हम यज्ञावशिष्ट हव्यों को ही ग्रहण करनेवाले बनें। तभी हमें 'दिव्य धाम (तेज)' प्राप्त होंगे। २. हे सरस्वति देवि! तू **नः**=हमारे लिए **प्रजां ररास्व**=प्रशस्त सन्तानों को प्राप्त करा। जहाँ घर में ज्ञानप्रधान वातावरण होगा, वहाँ सन्तानें उत्तम होंगे ही। ज्ञान के साथ व्यसनों का विरोध है।

**भावार्थ**—सरस्वती का आराधक यज्ञावशिष्ट हव्य पदार्थों का ही सेवन करता है। इससे उसे दिव्य तेज प्राप्त होता है और घर में सन्तान भी उत्तम होती हैं।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### मधुमन्तः ( स्याम )

**इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं[1] यत्।**
**इमानि त उदिता शन्तमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥**

१. हे **सरस्वति**=ज्ञानाधिष्ठातृदेवि! **इदम्**=यह **ते हव्यम्**=तेरा आदान (हु आदाने) **घृतवत्**=(घृ क्षरणदीप्त्योः) मलों के क्षरण व ज्ञान की दीप्तिवाला है। तेरे उपासन से मलों का विनाश होता है और ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। यह तेरा **हविः**=आदान **पितॄणाम्**=पितरों का है। रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग तेरा ग्रहण करते हैं। **यत्**=जो यह तेरा ग्रहण है, वह **आस्यम्**=(असु क्षेपणे) सब बुराइयों को परे फेंकनेवाला है। २. **इमानि**=ये **ते उदिता**=तेरे कथन **शन्तमानि**=अत्यन्त शान्ति देनेवाले हैं। यदि एक व्यक्ति वेदवाणी के अनुसार कार्य करता है, तो शान्ति प्राप्त करता है। **तेभिः**=उन तेरे कथनों से **वयम्**=हम **मधुमन्तः स्याम**=अत्यन्त मधुर व्यवहारवाले हों।

**भावार्थ**—'वेदवाणी' (सरस्वती) का आदान जीवन को निर्मल व दीप्त बनाता है। यह हमें रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त करता है और सब बुराइयों को हमसे दूर करता है। वेदवाणी के कथन शान्ति प्राप्त कराते हैं और हमारे जीवनों को मधुर बनाते हैं।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

### शिव, शान्त व शर्मवाले ( सुखी )

**शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वति। मा ते युयोम सन्दृशः ॥ ३ ॥**

१. हे **सरस्वति**=वर्णपदादिरूपेण प्रसरणवाली वाग्देवते! **शिवा**=कल्याणकारिणी तू **नः**=हमारे लिए **शन्तमा भव**=अतिशयेन रोगों को दूर करनेवाली व शान्ति प्राप्त करानेवाली हो। **सुमृडीका**=अतिशयेन सुख देनेवाली हो। २. हे सरस्वति! हम **ते संदृशः**=तेरे समीचीन दर्शन से—यथार्थ-स्वरूप ज्ञान से **मा युयोम**=पृथक् न हों। ज्ञान से पृथक् होना ही अपवित्रता व अशान्ति का कारण बनता है।

**भावार्थ**—हम सदा सरस्वती का आराधन करते हुए शिव, शान्त व शर्म-(सुख)-वाले हों।

## ६९. [ एकोनसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शन्तातिः**॥ देवता—**सुखम्**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

### 'वायु, सूर्य, दिन-रात व उषा' सब 'शम्' हों

**शं नो॒ वातो॑ वातु॒ शं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑। अहा॑नि॒ शं भ॑वन्तु**
**नः॒ शं रात्री॒ प्रति॑ धीयतां॒ शमु॒षा नो॒ व्यु॑ च्छतु॥ १॥**

१. **वातः**=यह बहनेवाला वायु **नः शम्**=हमारे लिए शान्तिकर होकर, **वातु**=प्रवाहित हो **सूर्यः**=सबको कर्मों में प्रेरित करनेवाला सूर्य **नः शं तपतु**=हमारे लिए शान्तिकर दीप्तिवाला हो। **अहानि**=दिन **नः शं भवन्तु**=हमारे लिए शान्तिकर हों। **रात्री**=रात **शं प्रतिधीयताम्**=सुख को हमारे साथ संहित करे (संदधातु) अथवा सुखकर होकर धारण की जाए। **उ**=और **उषाः**=उषा **शं**=शान्तिकर होती हुई **नः**=हमारे लिए **व्युच्छतु**=(विवासित) प्रकाशित हो।

**भावार्थ**—सरस्वती के आराधन के परिणामस्वरूप हमारे लिए 'वायु, सूर्य, दिन व रात तथा उषाकाल' सब शान्ति देनेवाले हों।

सरस्वती-आराधक यह शान्त व स्थिरवृत्ति का व्यक्ति 'अथर्वा' बनता है। अगले चार सूक्तों का यही ऋषि है—

## ७०. [ सप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**श्येनादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलु

**यत्किं चा॒सौ मन॑सा॒ यच्च॑ वा॒चा य॒ज्ञैर्जु॒होति॑ ह॒विषा॒ यजु॑षा।**
**तन्मृ॒त्युना॒ निर्ऋ॑तिः संविदा॒ना पुरा स॒त्यादा॑हु॒तिं ह॑न्त्वस्य॥ १॥**

१. **असौ**=वह दूरस्थ शत्रु **यत् किम्**=जो कुछ कर्म—शत्रुहननरूप कर्म करने के लिए **मनसा**=मन के द्वारा ध्यान करता है, **यत् च**=और जो कर्म **वाचा**=वाणी से 'करता हूँ' इसप्रकार कहता है तथा **यज्ञैः**=अभिचार कर्मों से, **हविषा**=उस कर्म के लिए उचित द्रव्यों से, **यजुषा**=मन्त्रों से **जुहोति**=होम करता है, **अस्य**=अपने प्रतिपक्ष के विनाश के लिए 'मन, वाणी व शरीर' से उपाय करते हुए शत्रु के **तत्**=उस मन से, ध्यान व वाणी से उक्त कर्म को तथा **आहुतिम्**=क्रिया से निष्पाद्यमान होमकर्म को **सत्यात् पुरा**=सत्यभूत कर्मफल से पहले ही, कर्म के सफल होने से पूर्व ही **निर्ऋतिः**=पाप देवता **मृत्युना संविदाना**=मृत्यु के साथ संज्ञान-(ऐकमत्य)-वाली हुई-हुई **हन्तु**=नष्ट कर डाले।

**भावार्थ**—शत्रु द्वारा 'मन, वाणी व कर्म' से हमारे विषय में क्रियमाण अभिचार कर्म के फलप्रद होने से पूर्व ही मृत्युसहित पापदेवता उस शत्रु को नष्ट कर डाले। पापकर्म करनेवाला उस कर्म से स्वयं ही विनष्ट हो जाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**श्येनादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अतिजगतीगर्भाजगती**॥

### यातुधानाः निर्ऋतिः

**या॒तुधा॒ना॒ निर्ऋ॑ति॒रादु रक्षस्ते अ॑स्य घ्नन्त्वनृ॒तेन स॒त्यम्।**
**इन्द्रे॑षिता दे॒वा आज्य॑मस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पा॑दि॒ यद॒सौ जु॒होति॑॥ २॥**

१. **यातुधानाः**=शत्रु की पर-पीड़ाकारी प्रवृत्तियाँ, **निर्ऋतिः**=निकृष्टगमनवृत्ति, दुराचरण, **आत् उ**=और निश्चय से **रक्षः**=राक्षसीभाव **ते**=वे सब-के-सब **अस्य सत्यम्**=इसके सत्य को

भी **अनृतेन घ्नन्तु**=अनृत से नष्ट कर डालें। ये ऐसा करें कि शत्रु से हमारे विषय में क्रियमाण कर्म उसे अभीष्ट फलप्रद न हो, अपितु विपरीत फल देनेवाला हो। २. **इन्द्रेषिताः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु से प्रेरित **देवाः**=सूर्य, विद्युत्, अग्नि आदि देव **अस्य आज्यम्**=इस शत्रु की दीप्ति को (अंज्=to shine, to be beautiful) **मथ्नन्तु**=नष्ट कर डालें। **असौ**=वह शत्रु **यत् जुहोति**=हमारी बाधा के लिए जो कर्म करता है **तत् मा संपादि**=वह कर्म सम्पन्न न हो, फलप्रद न हो, अंगविकल होकर उसी का विनाश करनेवाला हो।

**भावार्थ**—पर-पीड़ाकारी प्रवृत्तियाँ, दुराचरण व राक्षसीभाव इस विरोधी के कर्म को असफल करें। प्रभु की शक्तियाँ इस सामजविद्वेषी की दीप्ति को विनष्ट करें और इसका अभिचारकर्म असफल ही हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**श्येनादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरःककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

## अजिर+अधिराज

**अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव।**
**आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति॥ ३॥**

१. **अजिर-अधिराजौ**=(अज गतिक्षेपणयोः, राजृ दीप्तौ) गतिशील व इन्द्रियों का शासक—ये दोनों व्यक्ति **संपातिनौ श्येनौ इव**=आकाशमार्ग से द्वेष्य पक्षी पर निष्पतनशील बाज़ों के समान हैं। जैसे बाज़ शत्रुभूत पक्षी का विनाश करता है, इसी प्रकार ये अजिर और अधिराज **पृतन्यतः आज्यं हताम्**=सेना द्वारा संग्रामेच्छु पुरुष की दीप्ति को नष्ट करते हैं **यः च कश्चन**=और जो कोई शत्रु **नः**=हमपर **अभ्यघायति**=हिंसारूप पापकर्म करना चाहता है, उसकी दीप्ति को नष्ट करते हैं।

**भावार्थ**—हम गतिशील (अजिर) व इन्द्रियों के शासक (अधिराज) बनकर शत्रुओं को नष्ट करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**श्येनादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## शत्रुबन्धन

**अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्य ँम्।**
**अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः॥ ४॥**

१. **ते**=शत्रुभूत तेरी **उभौ बाहू**=दोनों भुजाओं को **अपाञ्चौ**=पृष्ठभाग से सम्बद्ध करके **अपि-नह्यामि**=बाँध देता हूँ, जिससे तेरी भुजाएँ अभिचार कर्म को कर ही न पाएँ। **आस्यम्**=तेरे मन्त्रोच्चारणसमर्थ मुख को भी बाँध देता हूँ, जिससे तू होमसाधनभूत मन्त्रों का उच्चारण ही न कर सके। २. उस **देवस्य**=शत्रुओं की विजिगीषावाले **अग्नेः**=अग्निवत् भस्म कर डालनेवाले प्रभु के **तेन मन्युना**=उस तेज से (क्रोध से) **ते हविः**=तेरे होतव्य द्रव्य को ही **अवधिषम्**=नष्ट कर देता हूँ।

**भावार्थ**—शत्रु को इसप्रकार बद्ध कर दिया जाए कि वह अभिचार कर्म कर ही न सके। प्रभु की विनाशक शक्तियों से उसका हविर्द्रव्य ही विनष्ट हो जाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**श्येनादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## घोर अग्नि के मन्यु से

**अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्य ँम्।**
**अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः॥ ५॥**

१. **ते बाहू अपि नह्यामि**=हे शत्रो! तेरी भुजाओं को बाँध देता हूँ। **आस्यम् अपिनह्यामि**=मुख

को भी बाँध देता हूँ। **घोरस्य अग्नेः तेन मन्युना**=शत्रु-भयंकर, अग्निवत् भस्मकारी प्रभु के उस तेज से (क्रोध से) **ते हविः अवधिषम्**=तेरे होतव्यद्रव्यों को ही मैं नष्ट किये देता हूँ।

**भावार्थ**—औरों के विनाश के लिए यत्नशील पुरुष प्रभु की व्यवस्था से स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

## ७१. [ एकसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### 'पुर, विप्र, धृषद्वर्ण, शत्रुहन्ता' प्रभु

**परि॑ त्वाग्ने॒ पुर॑ं व॒यं विप्रं॑ सहस्य धीमहि। धृ॒षद्वर्णं॑ दि॒वेदि॑वे ह॒न्तार॑ं भङ्गु॒रावत॑ः॥ १॥**

१. हे **सहस्य**=शत्रुमर्षकबल से सम्पन्न **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **परिधीमहि**=अपने चारों ओर धारण करते हैं। आपसे सुरक्षित हुए-हुए हम शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते। २. हम उन आपको धारण करते हैं, जो आप **पुरम्**=पालन व पूरण करनेवाले हो, **विप्रम्**=ज्ञानी हो, **धृषद्वर्णम्**=धर्षकरूप हो, शत्रुओं का धर्षण करनेवाले और **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **भंगुरावतः**=भग्नशील कर्मवाले राक्षसों के **हन्तारम्**=विनष्ट करनेवाले हो।

**भावार्थ**—प्रभु 'पुर, विप्र, धृषद्वर्ण व शत्रुहन्ता' हैं। प्रभु को अपने चारों ओर धारण करते हुए हम शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते।

## ७२. [ द्विसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### 'श्रातं जुहोतन' ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में

**उत्ति॑ष्ठताव॑ पश्यतेन्द्र॑स्य भा॒गमृ॒त्विय॑म्।**
**यदि॑ श्रा॒तं जु॒होत॑न॒ यद्यश्रा॑तं म॒मत्त॑न॥ १॥**

१. प्रभु कहते हैं कि **उत्तिष्ठत**=उठो, आलस्य को छोड़ो, लेटे ही न रहो। **अवपश्यत**=अपने अन्दर देखनेवाले बनो। अपनी कमियों को देखकर उन्हें दूर करनेवाले बनो। **इन्द्रस्य**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के **ऋत्वियम्**=समय पर प्राप्त **भागम्**=कर्त्तव्यभाग को देखनेवाले बनो। जो तुम्हारा प्रस्तुत कर्त्तव्य है, उसे देखकर उसके पालन में तत्पर होवो। जीवन के प्रथमाश्रम में 'ज्ञान-प्राप्ति' ही मुख्य कर्त्तव्य है। उस ज्ञान-प्राप्तिरूप कर्त्तव्य को देखकर उस ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहना ही ब्रह्मचारी के लिए शोभा देता है। २. आचार्य का कर्त्तव्य है कि यदि वह **श्रातम्**=यह अनुभव करे कि उसका विद्यार्थी ज्ञानपरिपक्व हो गया है, तो उस ज्ञानपरिपक्व विद्यार्थी को **जुहोतन**=आहुत कर दे, उसकी गृहस्थयज्ञ में आहुति दे दे, उसे गृहस्थ में प्रवेश की स्वीकृति दे दे, परन्तु यदि **अश्रातम्**=वह अभी ज्ञानपरिपक्व नहीं हुआ तो **ममत्तन**=उसे (पचत—सा०) अभी और पक्व करने का यत्न करे अथवा उसे अभी ज्ञान-प्राप्ति में ही आनन्द लेने के लिए प्रेरित करे।

**भावार्थ**—उठो, अपनी कमियों को दूर करो। ब्रह्मचर्याश्रम में अपने को ज्ञानपरिपक्व करके गृहस्थ में जाने के लिए तैयारी करो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### गृहस्थ से वानप्रस्थ में

**श्रा॒तं ह॒विरो ष्वि॑न्द्र॒ प्र या॑हि ज॒गाम॒ सूरो॒ अध्व॑नो॒ वि मध्य॑म्।**
**परि॑ त्वासते नि॒धिभि॒ः सखा॑यः कु॒लपा॒ न व्रा॑जप॒तिं चर॑न्तम्॥ २॥**

१. एक गृहस्थ संयम-जन्यशक्ति व ज्ञान के परिपाक से अपने आश्रम को बड़ी सुन्दरता से पूर्ण करता है। इसके द्वारा गृहस्थ में **हविः श्रातम्**=हवि का ठीक परिपाक किया गया है (हु दानादनयोः) यह सदा देकर बचे हुए को खानेवाला बना है। अब गृहस्थ की समाप्ति पर हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **उ**=निश्चय से **सु आप्रयाहि**=अच्छी प्रकार घर से जानेवाला बन, अर्थात् तू अब वनस्थ होने की तैयारी कर। **सूरः**=तेरा जीवन-सूर्य **अध्वनः मध्यम्**=मार्ग को **विजगाम**=विशेषरूप से प्राप्त हो गया है, अर्थात् आयुष्य के प्रथम ५० वर्ष बीत गये हैं, अतः अब तेरे वनस्थ होने का समय आ गया है। २. **त्वा परि**=तेरे चारों ओर **निधिभिः**=ज्ञान-निधियों की प्राप्ति हेतु से **सखायः आसते**=समानरूप से ज्ञान-प्राप्त करनेवाले ये विद्यार्थी आसीन होते हैं। ये विद्यार्थी **चरन्तम्**=गतिशील **व्राजपतिम्**=विद्यार्थिसमूह के रक्षक तेरे चारों ओर **कुलपाः न**=कुल के रक्षक के समान हैं। इन योग्य विद्यार्थियों से ही तो कुल का पालन होता है।

**भावार्थ**—गृहस्थ में दानपूर्वक अदन करते हुए हम पचास वर्ष बीत जाने पर वानप्रस्थ बनें। वहाँ हमें ज्ञान-प्राप्ति के हेतु से ब्रह्मचारी प्राप्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## वानप्रस्थ से संन्यास में

**श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः।**
**माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः॥ ३॥**

१. प्रभु इस वनस्थ से कहते है कि अब तुझे **ऊधनि श्रातं मन्ये**=वेदवाणीरूप गौ के ज्ञानदुग्ध के आधार में परिपक्व मानता हूँ। तूने अपने को ज्ञानविदग्ध बना लिया है। **अग्नौ श्रातम्**=तू ज्ञानाग्नि में परिपक्व हुआ है। शक्ति-सम्पन्नता के कारण तुझमें उत्साह (अग्नि) की भी कमी नहीं हैं, अतः मैं तुझे **सुशृतं मन्ये**=ठीक परिपक्व हुआ-हुआ समझता हूँ। अब **तत्**=तेरा यह जीवन **ऋतम्**=ठीक है, नियमित है, सत्य है। यह जीवन **नवीयः**=स्तुत्य व गतिशील है (नु स्तुतौ, नव गतौ)। २. **इन्द्रः**=हे जितेन्द्रिय पुरुष! **वज्रिन्**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए **पुरुकृत्**=खूब ही कर्म करनेवाले! तू **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक प्रभु की उपासना करता हुआ **माध्यन्दिनस्य सवनस्य**=जीवन के माध्यन्दिन सवनरूप इस गृहस्थाश्रम के **दध्नः पिब**=धारणात्मक कर्म को अपने में पीनेवाला, व्याप्त करनेवाला बन। तू अपने ज्ञानोपदेशों से गृहस्थों को धारण करनेवाला बन। संन्यासी का यही तो कर्त्तव्य है कि ज्ञानोपदेश द्वारा गृहस्थों का धारण करे।

**भावार्थ**—हम ज्ञान व शक्ति में परिपक्व होकर संन्यस्त और ज्ञान-प्रसार द्वारा संसार को धारण करनेवाले बनें।

# ७३. [ त्रिसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**जगती**॥

## तपनो घर्मः

**समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु।**
**वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः॥ १॥**

१. हे **वृषणा**=शक्ति का सेचन करनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **दिवः रथी**=ज्ञानप्रकाश का रथी (नेता=प्राप्त करानेवाला) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **समिद्धः**=हृदयदेश में समिद्ध किया गया है। प्राणसाधना से अन्तःकरण की अशुद्धियों के क्षय होने पर हृदय में प्रभु-दर्शन होता ही है। **घर्मः**=(घर्मः Sunshine) ज्ञान-सूर्य की दीप्ति **तप्तः**=खूब चमकी है (तप दीप्तौ)। **वाम् इषे**=आपकी

(इषे=इषि) प्रेरणा होने पर **मधु दुह्यते**=सारभूत वीर्यरूप मधु का शरीर में प्रपूरण होता है। प्राणसाधना से वीर्य की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है और यह वीर्य सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। २. हे प्राणापानो! **पुरुदमासः**=खूब ही इन्द्रियों का दमन करनेवाले होते हुए अथवा शरीररूप गृहों का पालन व पूरण करते हुए (**दम**=गृह, **पुरु**=पालन व पूरण) **कारवः**=प्रभुस्तवन करनेवाले **वयम्**=हम **सधमादेषु**=यज्ञों में (सह माद्यन्ति देवा अत्र) **हि**=निश्चय से **वां हवामहे**=आपको पुकारते हैं। वस्तुतः प्राणसाधना से ही उत्तमवृत्ति होकर यज्ञों की ओर झुकाव होता है।

**भावार्थ**—प्राणसाधना से हृदय में प्रभु का प्रकाश होता है, ज्ञान-सूर्य का उदय होता है, शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगति होती है और शरीररूप गृहों का सुन्दरता से पालन होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

## अश्विना, वृषणा, दस्रा

**समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम्।**
**दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः॥ २॥**

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अग्निः समिद्धः**=हृदयदेश में प्रभु दीप्त हुए हैं। **वाम्**=आपकी कृपा से **घर्मः तप्तः**=ज्ञान-सूर्य का दीपन हुआ है। **आगतम्**=आप हमें प्राप्त होवो। हे **वृषणा**=शक्ति का सेचन करनेवाले प्राणापानो! **नूनम्**=निश्चय से **इह**=आपकी साधनावाले इस जीवन में **धेनवः दुह्यन्ते**=वेदवाणीरूप धेनुओं से ज्ञानदुग्ध का दोहन करते हैं। **दस्रा**=हे मलों व दुःखों का उपक्षय करनेवाले प्राणापानो! **वेधसः**=बुद्धिमान् लोग, उस ज्ञानदुग्ध के दोहन से **मदन्ति**=हर्ष का अनुभव करते हैं।

**भावार्थ**—प्राणापानों की साधना से प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है, ज्ञान-सूर्य का उदय होता है और प्राणसाधक बुद्धिमान् लोग वेदधेनु से ज्ञानदुग्ध का दोहन करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## यज्ञ व अमृतत्त्व

**स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।**
**तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति॥ ३॥**

१. **यज्ञः**=यज्ञ **देवेषु**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **स्वाहाकृतः**=स्वार्थत्याग के द्वारा सिद्ध हुआ है। देववृत्ति के व्यक्ति निजू जीवन के व्ययों को कम करते हुए यज्ञों को सिद्ध करते हैं। यह यज्ञ **शुचिः**=जीवन को पवित्र बनानेवाला है। यह यज्ञ वह है **यः**=जोकि **अश्विनोः चमसः**=प्राणापान का—सोमपान का पात्र ही है। यज्ञ से जीवन पवित्र बनता है और वासनाओं से अनाक्रान्त होने के कारण शरीर में सोमरक्षण सम्भव होता है। यह यज्ञ **देवपानः**=दिव्य गुणों का रक्षक है। यज्ञ से दिव्यगुणों का वर्धन होता है। २. **तम् उ**=उस यज्ञ को निश्चय से **जुषाणाः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करते हुए **विश्वे**=सब लोग **अमृतासः**=नीरोग शरीरवाले होते हैं, अतः देव लोग इस यज्ञ को **गन्धर्वस्य आस्ना**=वेदवाणी के धारक पुरुष के मुख से **प्रतिरिहन्ति**=प्रतिदिन आस्वादित करते हैं, अर्थात् ये देव मन्त्रोच्चारण करते हुए यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं।

**भावार्थ**—स्वार्थत्याग होने पर ही यज्ञ सम्भव होता है। यह जीवन को पवित्र बनाता है, तभी सोम का रक्षण सम्भव होता है और दिव्य गुणों का वर्धन होता है। इस यज्ञ को वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रीति से सेवन करते हुए लोग अमृत=नीरोग होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**जगती**॥

## माध्वी, धर्तारा विदथस्य, सत्पती

**यदुस्त्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम्।**
**माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः॥ ४॥**

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जो **उस्त्रियासु**=गौवों में **घृतम्**=मलों का क्षरण करने तथा दीप्ति देनेवाला **पयः**=दूध **आहुतम्**=प्रभु द्वारा दिया गया है, स्थापित हुआ है, **अयं सः**=यह **वां भागः**=आपका भजनीय अंश है। **आगतम्**=आप आओ, उस दूध के ग्रहण के लिए प्राप्त होओ। २. हे प्राणापानो! आप **माध्वी**=मधुविद्या के वेदिता हो। प्रत्येक पदार्थ में प्रभु की महिमा को देखना ही मधुविद्या है। प्राणापान की साधना होने पर यह साधक सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखता है। अथवा **माध्वी**=आप जीवन को मधुर बनानेवाले हो। **विदथस्य धर्तारा**=यज्ञों को धारण करनेवाले हो। **सत्पती**=सब सत्कर्मों के रक्षक हो। **दिवः रोचने**=मस्तिष्करूप द्युलोक के दीप्त होने पर **तप्तं घर्मम्**=दीप्त हुए-हुए ज्ञानसूर्य को (Sunshine घर्म) **पिबतम्**=अपने अन्दर ग्रहण करो। प्राणापान का साधक ज्ञान का अपने अन्दर निरन्तर ग्रहण करता है।

**भावार्थ**—प्राणसाधक को चाहिए कि वह गोदुग्ध का सेवन करे। यह प्राणसाधना उसे मधुर जीवनवाला, यज्ञशील, उत्तम कर्मों का रक्षक व ज्ञानप्रकाश को अपने अन्दर लेनेवाला बनाएगी।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## अध्वर्युः पयस्वान्

**तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान्।**
**मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः॥ ५॥**

१. **वाम्**=हे अश्विनौ! आपका **तप्तः घर्मः**=दीप्त ज्ञानप्रकाश (सूर्यसम दीप्त ज्ञान) **नक्षतु**=हमें प्राप्त हो। प्राणसाधना के द्वारा हमें ज्ञानदीप्ति प्राप्त हो। यह **वाम्**=आपका **स्वहोता**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाला व्यक्ति **अध्वर्युः**=यज्ञशील हो तथा **पयस्वान्**=शक्तियों के आप्यायनवाला होता हुआ **प्रचरतु**=प्रकृष्ट गतिवाला हो। प्राणसाधना से मनुष्य 'यज्ञशील, आप्यायित शक्तिवाला तथा प्रकृष्ट गतिवाला' होता है। २. हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **तनायाः**='पयस्, दधि, आज्य'-रूप हवियों के देने के द्वारा यज्ञों का विस्तार करती हुई **उस्त्रियायाः**=इस गौ के **दुग्धस्य**=दोहे गये **मधोः**=मधुर रसोपेत, मधुवत् प्रीणनकारी **पयसः**=दूध का **वीतम्**=भक्षण करो, **पातम्**=पान करो। यह गोदुग्ध ही तुम्हारा खान-पान हो।

**भावार्थ**—प्राणसाधक 'दीप्त ज्ञानवाला, यज्ञशील, आप्यायित शक्तिवाला व प्रकृष्ट गतिवाला' होता है। प्राणसाधक को चाहिए कि ताज़े गोदुग्ध को ही अपना खान-पान बनाये।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**जगती**॥

## गोधुक्

**उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्त्रियायाः।**
**वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥ ६॥**

१. हे **गोधुक्**=इस वेदधेनु का दोहन करनेवाले साधक! तू **पयसा**=शक्तियों के आप्यायन के हेतु से **उपद्रव**=उस प्रभु के समीप प्राप्त हो। इसी दृष्टि से तू **घर्मे**=ज्ञानदीप्ति के निमित्त **उस्त्रियायाः**=गौ के **ओषम्**=ताज़ा (गर्मी को लिए हुए) **पयः आसिञ्च**=दूध को अपने में सिक्त कर। गौ का ताज़ा दूध ही अमृत है—'**पीयूषोऽभिनवं पयः**'। इस अमृत के पान से शक्ति

का वर्धन होता है, और बुद्धि-वृद्धि के द्वारा ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। २. ऐसा करने पर **वरेण्यः सविता**=वह वरणीय, प्रेरक प्रभु तेरे लिए **नाकं वि अख्यत्**=दुःख से असंभिन्न (न अकं) स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं। यह साधक **उषसः**=दोषों को दग्ध कर देनेवाली 'विशोका ज्योतिष्मती ऋतम्भरा प्रज्ञा' के **प्रयाणम् अनु**=प्रकर्षेण प्राप्त होने के अनुपात में (या प्रापणे) **विराजति**=दीप्त जीवनवाला होता है।

**भावार्थ**—हम वेदवाणी का दोहन करनेवाले बनकर शक्तियों का आप्यायन करते हुए प्रभु को प्राप्त हों। ज्ञानदीप्ति के निमित्त ताज़े गोदुग्ध का ही सेवन करें। प्रभु हमारे लिए मोक्ष को प्राप्त कराएँगे। प्राणसाधना द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त होकर हम दीप्तजीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**जगती**॥

## श्रेष्ठ सव

**उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदेनाम्।**
**श्रेष्ठं॑ स॒वं स॑वि॒ता सा॑विषन्नो॒ऽभी ऽद्धो॒ घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र वो॑चत्॥ ७॥**

१. मैं **एताम्**=इस **सुदुघाम्**=सुखसन्दोह्य **धेनुम्**=गौ को **उपह्वये**=पुकारता हूँ। प्रभु हमें सुदुघा धेनु प्राप्त कराएँ। **उत**=और **सुहस्तः गोधुक्**=सधे हुए हाथवाला, दोहन में निपुण ग्वाला **एनां दोहत्**=इसका दोहन करे। दोहन करता हुआ वह गोधुक् इसे पीड़ित न करे। २. इसप्रकार वह **सविता**=प्रेरक प्रभु **नः**=हमारे लिए **श्रेष्ठं सवम्**=(एष हि श्रेष्ठः सर्वेषां सवानां यदुदकं यद्वा पयः—नि० ११।४३) इस श्रेष्ठ दुग्ध को **साविषत्**=प्रेरित करे। इसके सेवन से **घर्मः**=(Sunshine) ज्ञानसूर्य की दीप्ति **अभीद्धः**=हममें दीप्त हुई है। वस्तुतः प्रभु ही **उ**=निश्चय से **तत्**=उस ज्ञान को **सु प्रवोचत्**=सुष्ठु उपदिष्ट करते हैं।

**भावार्थ**—हमें सुखसन्दोह्य गौ प्राप्त हो। सुहस्त गोधुक् उसका दोहन करे। इस गोदुग्ध के सेवन से हमें उत्तम ज्ञानदीप्ति प्राप्त हो। वस्तुतः इस ज्ञान का हृदयस्थ प्रभु ही तो हमारे लिए प्रवचन करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा**॥ छन्दः—**जगती**॥

## गौ का गोचर स्थान से प्रत्यावर्तन

**हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒ न्याग॑न्।**
**दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां महते सौभ॑गाय॥ ८॥**

१. **हिंकृण्वती**=अपने वत्स के प्रति 'हिं' शब्द करती हुई, **वसूनां वसुपत्नी**=उत्कृष्ट धनों का पालन करनेवाली (गोपालन ऐश्वर्यवृद्धि का कारण बनता है) **मनसा वत्सं इच्छन्ती**=मन में वत्स को चाहती हुई यह **अघ्न्या**=अहन्तव्या गौ **नि आगन्**=निश्चय से आये—प्राप्त हो। सायंकाल चरागाहों में चरने के बाद यह गौ घर में वापस आये। २. **इयम्** (अघ्न्या)=यह गौ **अश्विभ्याम्**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले पति-पत्नी के लिए (अश् व्याप्तौ) **पयः दुहाम्**=दूध का दोहन करे। **सा**=वह गौ **महते सौभगाय**=हमारे महान् सौभाग्य के लिए **वर्धताम्**=बढ़े, समृद्ध हो, खूब दूध आदि वस्तुओं को प्राप्त करानेवाली हो।

**भावार्थ**—सायं गौ अपने बछड़े का स्मरण करती हुई घर वापस आये। यह हमारे लिए दूध प्राप्त कराती हुई सौभाग्य का कारण बनती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

## प्रभु-उपासन व शत्रु-विनाश

**जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।**
**विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि॥ ९॥**

१. हे प्रभो! आप **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक सेवित हुए-हुए **दमूनाः**=(दानमनाः—नि० ४।४) सब-कुछ देने के मनवाले **अतिथिः**=निरन्तर गतिशील **विद्वान्**=ज्ञानी हैं। ये प्रभु **नः दुरोणे**=इस हमारे घर में **इमं यज्ञं उपयाहि**=इस यज्ञ को प्राप्त हों। हम सब घरों में यज्ञशील बनें। यज्ञों द्वारा प्रभु की उपासना करते हुए प्रभु को प्राप्त करें। २. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **विश्वाः**=सब **शत्रूयताम्**=शत्रु की भाँति आचरण करते हुए लोगों की **अभियुजः**=आक्रमणकारिणी पर-सेनाओं को **विहत्य**=नष्ट करके **भोजनानि आभर**=हमारे लिए पालन-साधनों को प्राप्त कराइए। इसप्रकार व्यवस्था कीजिए कि हम शत्रुओं को पराजित करके ठीक प्रकार अपना पालन कर सकें।

**भावार्थ**—हम यज्ञों द्वारा प्रीतिपूर्वक प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करें। प्रभु हमें पालन-साधनों को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

## महते सौभगाय

**अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।**
**सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि॥ १०॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप हमारे **महते सौभगाय**=महान् सौभाग्य के लिए **शर्ध**=आर्द्रहृदय होओ। (शृधु उन्दने) हमें धन देने के लिए उत्तम मनवाले होओ। **तव**=आपके, आपसे दिये गये **द्युम्नानि**=(Wealth) ऐश्वर्य **उत्तमानि सन्तु**=उत्कृष्ट हों। २. **जास्पत्यम्**=हमारे पति-पत्नी के कर्म को **सुयमम्**=उत्तम संयमवाला **सम् आकृणुष्व**=सम्यक् कीजिए। **शत्रूयताम्**=हमारे प्रति शत्रु की तरह आचरण करते हुए इन शत्रुओं के **महांसि**=तेजों को **अभितिष्ठ**=अभिभूत कीजिए। ये शत्रु हमें पराजित न कर सकें।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हम सौभाग्यवाले बनें। प्रभु-प्रदत्त ये धन उत्तम हों। हमारा गृहस्थकर्म बड़ा संयमवाला हो। शत्रुओं के तेज को हम प्रभुकृपा से अभिभूत कर पाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**घर्मः, अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

## भगवती (गौ)

**सूयवसाद्भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।**
**अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥ ११॥**

१. हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये गौ! तू **सूयवसात्**=उत्तम चरी को खाती हुई **हि**=निश्चय से **भगवती भूयाः**=उत्तम धनवाली व सौभाग्य को प्राप्त करानेवाली हो। **अध**=अब **वयम्**=हम **भगवन्तः स्याम**=उत्तम ऐश्वर्यवाले हों। इस गौ की कृपा से हम वसुमान् बनें, यह गौ 'वसूनां वसुपत्नी' ही तो है। २. हे अघ्न्ये! तू **विश्वदानीम्**=सदा **तृणं अद्धि**=घास खानेवाली हो, जिससे तेरे शरीर में कभी कोई विकार न आये। तू गोचर में **आचरन्ती**=चारों ओर विचरण करती हुई **शुद्धं उदकं पिब**=शुद्ध जल पी।

**भावार्थ**—उत्तम यवस (चरी) को खाती हुई, गोचर प्रदेशों में घास चरती हुई, विशुद्ध जल पीती हुई यह गौ हमारे लिए उत्तम दूध दे। यह हमें सौभाग्य-सम्पन्न करे।

## ७४. [ चतुःसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### गण्डमाला की चिकित्सा

**अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम।**
**मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्॥ १॥**

१. दोषवश (अपाक् चीयमाना) गले से लेकर नीचे कक्षादि सन्धि-स्थानों में फैलनेवाली गण्डमाला 'अपचित्' है। **लोहिनीनाम्**=इन लाल वर्ण की **अपचिताम्**=गण्डमाला की ग्रन्थियों की **माता**=जननी **कृष्णा इति शुश्रुम**=काले वर्ण की नाड़ियाँ हैं, ऐसा सुना जाता है। जिन नाड़ियों में शुद्ध लाल वर्ण का रक्त बहता है, उनसे भिन्न अशुद्ध नील वर्ण के रक्त की नाडियाँ 'कृष्णा' हैं। इनके कारण ही गण्डमाला की ग्रन्थियों को जन्म मिलता है, अर्थात् अशुद्धरक्त के कारण ये ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। २. **ताः सर्वाः**=उन सब गण्डमाला की ग्रन्थियों को **अहम्**=मैं **देवस्य**=रोग को जीतने की कामनावाले **मुनेः**='वंगसेन' तरु के **मूलेन**=मूल से **विध्यामि**=विद्ध करता हूँ।

**भावार्थ**—वंगसेन (अथवा प्रियाल, अगस्ति व पलाश ) वृक्ष के मूल से गण्डमाला की ग्रन्थियों का वेधन किया जा सकता है। ये ग्रन्थियाँ अशुद्ध रक्त के कारण उद्भूत हो जाती हैं। 'मुनिः पुंसी वसिष्ठादौ वंगसेनतरौजिने' मेदिनी, (मुनिर्कश्चन्मतेऽर्हति प्रियालागस्तिपालाशे)।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### 'तीव्र, मध्यम व अल्प' स्थिति में गण्डमाला

**विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम्।**
**इदं जघन्या ∫ मासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव॥ २॥**

१. दोष के प्रकर्ष, साम्य (मध्यमस्थिति) व अल्पत्व के भेद से गण्डमाला भी तीन भागों में बँट जाती है। **आसाम्**=इन गण्डमालाओं में **प्रथमाम्**=दोषप्रकर्षेण उद्भूत दुश्चिकित्स्य गण्डमाला को **विध्यामि**=वंगसेन तरु के मूल से बींधता हूँ **उत**=और **मध्यमाम्**=दोष साम्य (मध्यम स्थितिवाले दोष) से उद्भूत न अधिक दुःसाध्य गण्डमाला को भी बींधता हूँ। २. **इदम्**=(इदानीं) अब **आसाम्**=इन गण्डमालाओं में **जघन्याम्**=अल्पदोष समुद्भूता अतएव थोड़े से प्रयत्न से चिकित्सनीया गण्डमाला को भी **स्तुकाम् इव**=ऊन के बाल की भाँति **आच्छिनद्मि**=सर्वतः छिन्न कर देता हूँ।

**भावार्थ**—'तीव्र, मध्यम व अल्प ' जिस भी स्थिति में गण्डमाला हो, उसे एकदम दूर करना ही अभीष्ट है और यह वंगसेन तरु के मूल से हो सकता है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### ईर्ष्या व क्रोध को दूर करना

**त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि तं ईर्ष्याममीमदम्।**
**अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि॥ ३॥**

१. हे ईर्ष्योपेत पुरुष! **ते**=तेरी **ईर्ष्याम्**=ईर्ष्या को **त्वाष्ट्रेण वचसा**=संसार के निर्माता प्रभु की वाणी से (यथा **भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा। यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः** '६।१८।२') **अहम्**=मैं **वि अमीमदम्**=विगत मद करता हूँ, अर्थात् दूर करता हूँ—ईर्ष्या को उद्रेक-(प्रबलता)-रहित करता हूँ। २. **अथो**=और **हे पते**=स्वामिन्! **यः ते मन्युः**=जो तेरा मेरे

विषय में क्रोध है, **उ**=निश्चय से तेरे **तम्**=उस क्रोध को **शमयामसि**=हम शान्त करते हैं।

वेदवचनों के द्वारा प्रेरित करके तथा अपने मधुर व्यवहार से पत्नी पति की ईर्ष्या व क्रोध को दूर करने का यत्न करे।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**जातवेदाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## व्रतपति प्रभु का मिलकर उपासन

**व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह।**
**तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे॥ ४॥**

१. हे **व्रतपते**=व्रतों के रक्षक प्रभो! **त्वम्**=आप **व्रतेन समक्तः**=व्रत के द्वारा, पुण्य कर्मों के द्वारा संस्कृत-सम्भावित-सम्यक् इष्ट (पूजित) होते हो। व्रतों द्वारा समक्त हुए-हुए आप **विश्वाहा**=सदा **सुमनाः**=शोभन मनवाले—हमारे विषय में अनुग्रहबुद्धियुक्त होते हुए **इह**=यहाँ हमारे घर में **दीदिहि**=दीप्त होओ। २. हे **जादवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **समिद्धम्**=सम्यक् दीप्त **तं त्वा**=उन आपको **प्रजावन्तः**=पुत्रों के समेत **सर्वे वयम्**=हम सब **उपसदेम**=उपासित करें। हम सब मिलकर आपकी उपासना करनेवाले बनें। यह उपासना ही हमें व्रतमय जीवनवाला बनाकर ईर्ष्या, क्रोध आदि से बचाएगी।

**भावार्थ**—पुण्यकर्मों द्वारा हम व्रतपति प्रभु को अपने जीवन में सम्भावित करें। हम मिलकर प्रातः-सायं घर में प्रभु का उपासन करें। यह उपासन हमें ईर्ष्या व क्रोध से दूर रक्खेगा।

ये उपासक अपने को ईर्ष्या, क्रोध आदि से ऊपर उठाते हैं, अतः 'उपरिबभ्रव' कहलाते हैं। गोदुग्ध का सेवन इन्हें ऊपर उठने में सहायक होता है। ये 'उपरिबभ्रवः' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ७५. [ पञ्चसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः**॥ देवता—**अघ्न्याः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सूयवस+शुद्ध जल

**प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।**
**मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु॥ १॥**

इस मन्त्र की व्याख्या अथर्व० ४।२१।७ पर द्रष्टव्य है।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः**॥ देवता—**अघ्न्याः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाभुरिक्पथ्यापङ्क्तिः**॥

## रमतयः विश्वनाम्नीः

**पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः। उप मा देवीर्देवेभिरेत।**
**इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत॥ २॥**

१. हे **रमतयः**=पयःप्रदान आदि से रमयित्री गौवो! तुम **पदज्ञाः स्थ**=(पद्यते गम्यते इति पदं गृहम्) अपने-अपने घर को जाननेवाली हो। गोसंचर स्थान में चरकर फिर अपने घर में ही आनेवाली हो। तुम **संहिताः**=बछड़ों से युक्त हो, **विश्वनाम्नीः**=बहुविध नामोंवाली हो (इडे रन्तेऽदिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विश्रुत्येतानि ते अघ्न्ये नामानि—तै० ७।१।६।८) अथवा आप विश्व को अपनी ओर झुकानेवाली हो, क्षीरादि के लाभ के लिए सब गौवों को चाहते ही हैं। २. इसलिए हे **देवीः**=रोगों को पराजित करने की कामनावाली तुम **देवेभिः**=क्रीड़ा करते हुए अपने बछड़ों के साथ **मा उप एत**=मुझे समीपता से प्राप्त होओ और आकर **इमं गोष्ठम्**=इस गो-निवासस्थान को, **इदं सदः**=इस हमारे घर को और **अस्मान्**=हम गृहस्वामियों को **घृतेन**

**समुक्षत**=घृतोत्पादक दूध से सिक्त कर दो। आपके कारण हमारे घरों में घी-दूध की कमी न रहे।

**भावार्थ**—गौवें हमारे जीवन को आनन्दयुक्त करनेवाली हैं। दूध आदि की प्राप्ति के लिए सब कोई इनकी प्रार्थना करता हैं। ये हमारे रोगों को पराजित करती हैं, अतः हमारे घरों में इनके द्वारा दूध की कमी न रहे।

अगले सूक्त का ऋषि 'अथर्वा' है। वह स्थिरवृत्ति का होता हुआ 'गण्डमाला' आदि रोगों का विनाश करता है—

## ७६. [ षट्सप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अपचिद् भैषज्यम्**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥

### गण्डमाला में लवण का प्रयोग

**आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः।**
**सेहोरसतरा लवणाद्विक्लेदीयसीः॥ १॥**

१. **सुस्रसः**=अतिशयेन स्रवणशील—सर्वदा पूय (पस) आदि के रूप में स्रवणशील, अतएव **असतीभ्यः**=पीड़ित करनेवाले रोगी व्यक्तियों से भी **असत्तराः**=अतिशयेन बाधिका ये गण्डमालाएँ **आसुस्रसः**=समन्तात् निरवशेषेण स्रवणशील हों, निःशेष स्रवण से ये नष्ट हो जाएँ। २. **सेहोः**=(सेहुर्नाम विप्रकीर्णावयवः अत्यन्तं निःसारस्तूलादिरूपः पदार्थः) अत्यन्त नीरस तूल आदि रूप पदार्थ से भी **असत्तराः**=ये गण्डमालाएँ निःसारतर हैं, पाकावस्था से पूर्व ये बाधिका हैं ही नहीं। अब ये कक्षादिसन्धि-प्रदेशों में व्याप्त हुई-हुई व्रणरूपेण बाधित करने लगती हैं। सब अवयवों में व्याप्त हो जाने के बाद **लवणात्**=लवण से **विक्लेदीयसीः**=अतिशयेन विविध क्लेदनवाली होती हैं। लवण के प्रयोग से ये गण्डमालाएँ पूय आदि के रूप में स्रवणशील हो जाती हैं और इसप्रकार स्रवणवाली होकर ये नष्ट हो जाती हैं।

**भावार्थ**—पूय आदि के स्रवणवाली व सेहु के समान शुष्क गण्डमालाएँ भी लवण के प्रयोग से क्लिन्न होकर खूब स्रवणशील हो जाती हैं। स्रवणशील होकर ही ये नष्ट होती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अपचिद् भैषज्यम्**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

### 'ग्रैव्य व उपपक्ष्य' गण्डमाला

**या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्या उ॒तः। विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः॥ २॥**

१. **याः ग्रैव्याः**=जो गल-प्रदेश में उत्पन्न (ग्रीवाभव) **अपचितः**=गण्डमालाएँ हैं, **अथो**=और **यः उपपक्ष्याः**=पक्ष के समीप—कक्षप्रदेश में होनेवाली गण्डमालाएँ है और **याः अपचितः**=जो गण्डमालाएँ **विजाम्नि**=(विशेषेण जायते अपत्यम् अत्र) गुह्य प्रदेश में हैं, अथवा उरु-सन्धि में हैं, वे सब **स्वयंस्रसः**=स्वयं स्रवणशील हो जाएँ, स्वयं स्रुत होकर नष्ट हो जाएँ।

**भावार्थ**—ग्रैव्य, उपपक्ष्य गुह्यप्रदेशस्थ गण्डमालाएँ स्रुत होकर नष्ट हो जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जायान्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### राजयक्ष्मा

**यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्य ऽ मवतिष्ठति।**
**निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः॥ ३॥**

१. **यः**=जो राजयक्ष्मा रोग **कीकसाः**=हड्डियों को **प्रशृणाति**=हिंसित करता है, हड्डियों में व्याप्त हो जाता है, **तलीद्यम्**=(तडित्=अन्तिकनाम—नि० २।१६) अस्थिसमीपगत मांस में **अवतिष्ठति**=स्थित होता है, अर्थात् जो मांस का शोषण करता है, **यः कः च**=और जो कोई

कठिन राजयक्ष्मा नामक रोग **ककुदि श्रितः**=ग्रीवाके पृष्ठ भाग में संश्रित हुआ-हुआ शरीर को क्षीण करता है **तं सर्वम्**=उस सब शरीरगत सर्वधातुशोषक **जायान्यम्**=निरन्तर जाया संभोग से जायमान क्षयरोग को **निर्हाः**=औषध द्वारा दूर करे, नष्ट करे।

**भावार्थ**—संभोग के अतिशय के कारण उत्पन्न राजयक्ष्मा हड्डियों को, मांस को व ग्रीवा के पृष्ठभाग को हिंसित कर देता है। योग्य वैद्य उचित औषध-प्रयोग से इसे दूर करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जायान्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

**पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम्।**
**तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च॥ ४॥**

१. **जायान्यः**=जाया-संभोग से उत्पन्न होनेवाला क्षयरोग **पक्षी**=पक्षवाला—पक्षी बनकर **पतति**=सब जगह पहुँचता है, फैल जाता है। **सः पुरुषम् आविशति**=यह रोग पुरुष के सम्पूर्ण शरीर में प्रविष्ट (व्याप्त) हो जाता है। २. **तत्**=अगले (पाँचवें) मन्त्र में वर्णित हवि **अक्षितस्य**=जो शरीर में चिरकाल से अवस्थित नहीं हुआ, **च**=और जो **सुक्षतस्य**=शरीरगत सब धातुओं का हिंसन करनेवाला है, उन **उभयोः**=दोनों क्षयरोगों (अक्षित और सुक्षत) की **भेषजम्**=औषध है।

**भावार्थ**—क्षयरोग के बीज सर्वत्र उड़ते-से हैं, वे पुरुष में प्रवेश करके उसे पीड़ित करते हैं। हवि के द्वारा इनका निवारण सम्भव है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**जायान्यः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

## अग्निहोत्र से राजयक्ष्मा का विनाश

**विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे।**
**कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे॥ ५॥**

१. हे **जायान्य**=जाया-संभोग से उत्पन्न राजयक्ष्मा रोग! हम **ते जानम्**=तेरे उत्पत्ति—निदान (कारण) को **वै**=निश्चय से **विद्म**=जानते हैं। हे **जायान्य**=जाया-संभोगजनित रोग! **यतः जायसे**=जिस कारण से तू उत्पन्न होता है, उसे हम जानते हैं। २. तेरे कारण को जानते हुए हम **यस्य गृहे हविः कृण्मः**=जिसके घर में हवि=अग्निहोत्र करते हैं, **तत्र**=वहाँ यह यजमान को **ह**=निश्चय से **त्वं कथं हनः**=तू किस प्रकार मार सकता है, अर्थात् जहाँ अग्निहोत्र होता है, वहाँ यह रोग नहीं पनप पाता।

**भावार्थ**—राजयक्ष्मा जाया-संभोग के अतिशय से उत्पन्न होता है। अग्निहोत्र के द्वारा इसका निवारण होता है। (**'अग्नेर्होत्रेण प्रणुदा सपत्नान्।', 'मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्॥'**)

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## सोम-पान द्वारा 'रयिष्ठान' बनना

**धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।**
**माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि॥ ६॥**

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षक होता हुआ तू **कलशे**=सोलह कलाओं के आधारभूत इस शरीर में **सोमं पिब**=सोम का पान कर। हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले इन्द्र! **वृत्रहा**=वृत्र को मारनेवाला तू **वसूनाम्**=वसुओं के, धनों के **समरे**=(सम् ऋ) सम्यक् प्राप्ति के निमित्त सोम का पान कर। शरीर में सोम का पान होने पर ही सब वसुओं की प्राप्ति होती है। २. **माध्यन्दिने सवने**=जीवन के माध्यन्दिन सवन, अर्थात् गृहस्थकाल में

भी **आवृषस्व**=तू सर्वथा शरीर में इस शक्ति का सेचन करनेवाला हो। **रयिष्ठानः**=इसप्रकार ऐश्वर्य का अधिष्ठान होता हुआ तू **अस्मासु**=हममें भी **रयिं धेहि**=रयि का धारण करनेवाला बन। तेरे आदर्श से हम भी वीर्यरक्षण करते हुए रयि को प्राप्त करनेवाले बनें।

**भावार्थ**—हम 'काम' आदि शत्रुओं का धर्षण करते हुए शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले बनें। यही वसुओं की प्राप्ति का मार्ग है। गृहास्थाश्रम में भी वीर्यरक्षण का ध्यान करते हुए सब ऐश्वर्यों के अधिष्ठान बनें। हमारा जीवन औरों को भी उचित प्रेरणा दे।

सोमरक्षण द्वारा अंग-प्रत्यंग में रसवाला यह उपासक 'अंगिराः' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ७७. [ सप्तसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**त्रिपदागायत्री**॥

### 'सान्तपनाः रिशादसः' मरुतः

**सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। अस्माकोती रिशादसः॥ १॥**

१. हे **मरुतः**=प्राणो! आप **सान्तपनाः**=ज्ञानज्योति को सन्दीप्त करनेवाले हो। **इदं हविः**=यह दानपूर्वक अदन सामग्री है, यज्ञ करके यज्ञावशिष्ट पदार्थ है, **तत् जुजुष्टन**=इसका तुम सेवन करो। सदा यज्ञशेष को ही खानेवाले बनो। २. **अस्माक ऊती**=हमारे रक्षण के उद्देश्य से आप **रिशादसः**=(रिशन्ति हिंसन्ति इति रिश्यः) शत्रुओं के उपक्षपयिता (दस् उपक्षये) हो अथवा इन शत्रुओं के खा जानेवाले (अद् भक्षणे) हो।

**भावार्थ**—प्राणसाधना से ज्ञानज्योति दीप्त होती है तथा काम-क्रोध आदि हिंसक शत्रुओं का विनाश होता है। यज्ञशेष का सेवन करते हुए ये प्राण हमारा रक्षण करते हैं

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### 'वसवः' मरुतः

**यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।**
**द्रुहः पाशान्प्रति मुञ्चतां स तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम्॥ २॥**

१. हे **वसवः**=बसानेवाले, प्रशस्य अथवा वसुप्रद मरुतो! **यः मर्तः**=जो भी मनुष्य **दुर्हणायुः**=बुरी तरह से क्रोध करता हुआ **तिरः**=तिरोभूत, अन्तर्हित हुआ-हुआ **नः चित्तानि**=हमारे चित्तों को **जिघांसति**=नष्ट करना चाहता है, हमें क्षुब्ध करता है, **सः**=वह **द्रुहः पाशान्**=पापों के द्रोग्धा वरुण के पाशों को **प्रतिमुञ्चताम्**=धारण करे, वरुण के पाशों से बद्ध हो—प्रभु उसे दण्डित करें। **तपिष्ठेन तपसा**=अतिशयेन दीप्ति को प्राप्त करानेवाले तप से **तं हन्तन**=उसे विनष्ट करो। २. यदि कोई मनुष्य छिपे रूप में हमारे प्रति क्रोध की भावनावाला होकर हमारे मनोरथों को नष्ट करना चाहता है, तो हम उसके प्रति क्रोध न करते हुए यही सोचें कि प्रभु उसे उसके अपराध के लिए दण्डित करेंगे तथा हम तप के द्वारा जीवन को दीप्त बनाते हुए उसके क्रोध को नष्ट करने का यत्न करें।

**भावार्थ**—जो क्रोधी मनुष्य हमें क्षुब्ध करना चाहता है,वह वरुण के पाशों में जकड़ा जाए।

ऋषिः—**अङ्गिराः**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**जगती**॥

### 'संवत्सरीणाः स्वर्काः' मरुतः

**संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः।**
**ते अस्मत्पाशान्प्र मुञ्चन्त्वेनसः सान्तपना मत्सरा मादयिष्णवः॥ ३॥**

१. **संवत्सरीणाः**=सम्यक् निवास के हेतुभूत **मरुतः**=प्राण **स्वर्काः**=(अर्कम् अन्नम्) उत्तम अन्न का सेवन करनेवाले हैं। प्राणसाधक को सदा सात्त्विक अन्न का ही सेवन करना है। ये प्राण **उरुक्षयाः**=विशाल निवास स्थानवाले हैं, ये शरीर की शक्तियों की विशालता का कारण बनते हैं। **सगणाः**=(सप्तगणा वै मरुतः—तै०२.२.५.७.) सात-सात के सात गणोंवाले हैं। उनचास भागों में बँटकर शरीर में कार्य कर रहे हैं। **मानुषासः**=मनुष्य का हित करनेवाले हैं। हमें विचारशील बनानेवाले हैं। २. ये **ते**=वे मरुत् (प्राण) **अस्मत्**=हमसे **एनसः पाशान्**=पाप के पाशों को **प्रतिमुञ्चन्तु**=छुड़ा दें। **सान्तपनाः**=ये हमें अति दीप्त जीवनवाला बनाते हैं, **मत्सराः**=आनन्दपूर्वक गति करनेवाले हैं और **मादयिष्णवः**=हमें सन्तोष प्राप्त करानेवाले हैं।

**भावार्थ**—प्राणसाधना के साथ सात्त्विक अन्न का सेवन करते हुए हम 'दीर्घजीवी, विशाल शक्तियोंवाले, विचारशील, निष्पाप, दीप्त, प्रसन्न व सन्तोषवाले' बनेगें।

यह प्राणसाधक 'अथर्वा' बनता है, यही अगले सूक्तों का ऋषि है—

## ७८. [ अष्टसप्ततितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

### 'दशना योक्त्र व नियोज्य' का विमोचन

**वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्। इहैव त्वमजस्त्र एध्यग्ने॥ १॥**

१. **ते**=तेरी **रशनाम्**=कण्ठ-बन्धनसाधनभूता बाधिका रज्जु को **विमुञ्चामि**=विमुक्त करता हूँ। **योक्त्रं वि (मुञ्चामि)**=मध्यप्रदेश-बन्धनसाधनभूत रज्जुविशेष को भी विमुक्त करता हूँ तथा **नियोजनम् वि**=सर्वावयव-बन्धक नीचीन-बन्धनसाधनभूत रज्जुविशेष को भी तुझसे पृथक् करता हूँ। उपरले अवयवों में, मध्य के अवयवों में अथवा निचले अवयवों में जहाँ कहीं भी कोई रोग का निदानभूत मल है, उसे तेरे शरीर से पृथक् करता हूँ। २. अब 'इन रशना, योक्त्र व नियोजन' के विमोचन के कारण हे **अग्ने**=अग्निवत् दीप्त पुरुष! रोगमुक्ति के कारण चमकनेवाले पुरुष! तू **इह एव**=इस लोक में ही **अजस्त्रः**=शत्रुओं से व मृत्यु से अबाधित हुआ-हुआ **एधि**=हो।

**भावार्थ**—उत्तम, मध्यम व अधम रोगबन्धनों से मुक्त होकर, अग्निवत् दीप्त होते हुए हम इस लोक में उत्तम जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### क्षत्राणि द्रविणा भद्रम्

**अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।**
**दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु॥ २॥**

१. **अस्मै**=इस अपने उपासक के लिए **क्षत्राणि धारयन्तम्**=बलों का धारण करनेवाले **त्वा**=आपको, हे **अग्ने**=प्रभो! **दैव्येन ब्रह्मणा**=देव से प्राप्त ज्ञान के द्वारा, प्रभु को प्राप्त करनेवाले ज्ञान के द्वारा, **युनज्मि**=अपने साथ जोड़ता हूँ। प्रभु हमें बल प्राप्त कराते हैं, हम ज्ञान के द्वारा प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें। २. हे प्रभो! आप **इह**=इस जीवन में **द्रविणा**=धनों को **भद्रम्**=कल्याण व सुख को **दीदिहि**=दीजिए अथवा हमारे लिए धन आदि को दीप्त कीजिए। **इमं हविर्दाम्**=इस हवि देनेवाले यज्ञशील पुरुष को **देवतासु प्रवोचः**=देवों के विषय में प्रकृष्ट ज्ञान दीजिए। इन सूर्य आदि देवों का ज्ञान प्राप्त करके हम उनसे उचित लाभ प्राप्त करते हुए उन्नत जीवनवाले बनें।

**भावार्थ**—प्रभु हमें 'बल, धन, कल्याण व ज्ञान' प्राप्त कराते हैं। हम ज्ञान द्वारा प्रभु को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हों।

प्रभु से बल आदि को प्राप्त करनेवाला अथर्वा प्रार्थना करता है कि—

## ७९. [ एकोनशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अमावास्या**॥ छन्दः—**जगती**॥

### सूर्य+चन्द्र

**यत्ते॑ दे॒वा अकृ॑ण्वन्भाग॒धेय॒ममा॑वास्ये सं॒वस॑न्तो महि॒त्वा।**
**तेना॑ नो य॒ज्ञं पिपृहि विश्ववारे र॒यिं नो॑ धेहि सुभगे सु॒वीर॑म्॥ १॥**

१. 'अमावास्या' को अमावास्या इसलिए कहते हैं कि इसमें सूर्य और चन्द्र साथ-साथ रहते हैं। (अमा+वस्) 'सूर्य' प्रकाश व तेजस्विता का प्रतीक है 'चन्द्र' आह्लाद व सौम्यता का। मानव जीवन में दोनों का समन्वय अभीष्ट है। तेजस्विता व सौम्यता का समन्वय सब दिव्य गुणों की उत्पत्ति का हेतु बनता है। हे **अमावास्ये**=अमावास्ये! **ते महित्वा**=तेरी महिमा से **यत्**=जब **संवसन्तः**=सम्यक् मिलकर रहते हुए **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **भागधेयं अकृण्वन्**=हवि का भाग करते हैं, अर्थात् यज्ञशील होते हैं तब हे **विश्ववारे**=सबसे वरने के योग्य **सुभगे**=शोभन-भाग्ययुक्त अमावास्ये! **तेन**=उस हविर्भाग के द्वारा **नः यज्ञं पिपृहि**=हमारे यज्ञ को पूर्ण कर तथा **नः**=हमारे लिए **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले **रयिम्**=ऐश्वर्य को **धेहि**=धारण कर।

**भावार्थ**—जिस समय एक घर में रहनेवाले व्यक्ति सूर्य व चन्द्रतत्त्वों का अपने में समन्वय करते हैं, उस समय वे (क) परस्पर मिलकर रहते हैं, (ख) देववृत्ति के बनकर यज्ञशील होते हैं, (ग) वीर सन्तानों व ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अमावास्या**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### अमावास्या

**अ॒हमे॒वास्म्य॑मावा॒स्या॒ ३॒ मामा व॑सन्ति सु॒कृतो॒ मयी॒मे।**
**मयि॑ दे॒वा उ॒भये॑ सा॒ध्याश्चेन्द्र॑ज्येष्ठाः सम॑गच्छन्त॒ सर्वे॑॥ २॥**

१. **अहम्**=मैं **एव**=ही अमावास्या **अस्मि**='अमावास्या' हूँ। **सुकृतः माम् आवसन्ति**=उत्तम कर्मोंवाले देव मुझमें निवास करते हैं। **'आ मा वसन्ति देवाः'** यही तो अमावास्या शब्द की निरुक्ति है। **मयि इमे**=ये देव मुझमें निवास करते हैं, अतः मैं अमावास्या हूँ। २. **साध्याः च** ('च' शब्दः समुच्चये, सिद्धाः अपि)=साध्य और सिद्ध **उभये**=दोनों ही **इन्द्रज्येष्ठाः**=इन्द्र प्रमुख **सर्वे देवाः**=सब देव **मयि समगच्छन्त**=मुझमें संगत होते हैं। इसप्रकार 'माम् आ वसन्ति देवाः' 'मयि निवसन्ति यष्टव्यत्वेन' 'मयि संगच्छन्ते' यही अमावास्या शब्द का निर्वचन है। २. जिस समय हमारे जीवनों में 'तेजस्विता व सौम्यता' का, 'प्रकाश व आह्लाद' का समन्वय होता है तब सब दिव्य गुणों का विकास होता है। यही अमावास्या में देवों का निवास है। इस घर में सब देववृत्ति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। जिन्होंने अभी चलना प्रारम्भ किया है वे 'साध्य' हैं, जो कुछ आगे निकल गये हैं वे 'सिद्ध' हैं। गृह के मुख्य व्यक्ति 'इन्द्र' हैं। इसप्रकार यह स्वर्ग ही बन जाता है।

**भावार्थ**—अमावास्या का उपदेश यही है कि एक घर में 'छोटे, बड़े तथा घर के मुख्य व्यक्ति' सब मिलकर उत्तम कर्मों को करते हुए यज्ञशील बनें और घर को स्वर्ग बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अमावास्या**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'वसूनां संगमनी' अमावास्या

**आगन्रात्री सं॒गम॑नी॒ वसू॑नामू॒र्जं पुष्टं॑ वस्वा॑वे॒शय॑न्ती।**
**अ॒मा॒वा॒स्या ∫ यै ह॒विषा॑ वि॒धेमोर्जं॑ दुहा॑ना॒ पय॑सा॒ न॒ आग॑न्॥ ३॥**

१. यह **रात्री**=अमावास्या-काल-युक्ता रात्रि **आगन्**=हमें प्राप्त हुई है। हमने अपने जीवन में सूर्य व चन्द्र का समन्वय किया है। यह रात्रि **वसूनां संगमनी**=सब वसुओं—धनों का हमारे साथ मेल करनेवाली है तथा यह **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **पुष्टम्**=सब अंगों के पोषण को तथा **वसु**=धन को **आवेशयन्ती**=हमारे अभिमुख प्राप्त कराती हुई आती है। २. इस **अमावास्यायै**=अमावास्या के लिए—अपने जीवन में सूर्य-चन्द्र के समन्वय के लिए **हविषा विधेम**=हवि द्वारा हम पूजन करते हैं। यज्ञशील बनने पर ही प्रभुकृपा से अमावास्या का हमारे जीवनों में प्रवेश होता है। **ऊर्जं दुहाना**=बल व प्राणशक्ति का हममें प्रपूरण करती हुई यह **पयसा**=सब शक्तियों के आप्यायन के साथ **नः आगन्**=हमें प्राप्त होती है।

**भावार्थ**—यज्ञों के द्वारा प्रभु-पूजन होने पर हमारे जीवनों में अमावास्या का आगमन होता है, हमारे जीवनों में सूर्य-चन्द्र का समन्वय, तेजस्विता व सौम्यता का मेल होता है। ऐसा होने पर हमें 'बल, प्राणशक्ति, पोषण, वसु व अंगो का आप्यायन' प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अमावास्या**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'निर्मात्री' अमावास्या

**अमा॑वास्ये॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॑ प॒रि॒भूर्ज॑जान।**
**यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम्॥ ४॥**

१. हे **अमावास्ये**=सूर्य और चन्द्र के साथ-साथ निवासवाली प्रवृत्ते! **त्वत् अन्यः**=तुझसे भिन्न अन्य कोई देव **एतानि विश्वा रूपाणि**=इन सब रूप्यमाण भूतों को **परिभूः न जजान**=व्यापन करनेवाला नहीं उत्पन्न हुआ। अमावास्या ही सब रूपों को प्रादुर्भूत करनेवाली होती है। सूर्य और चन्द्र के समन्वय में ही सब उत्पादन निहित है। इनके समन्वय के अभाव में विनाश है। २. हे अमावास्ये! **यत्कामाः**=जिस फल की कामनावाले होते हुए हम **ते जुहुमः**=तेरे लिए हवियाँ देते हैं, **तत् नः अस्तु**=वह फल हमें प्राप्त हो और **वयम्**=हम **रयीणां पतयः स्याम**=धनों के स्वामी बनें, कभी धनों के दास न बन जाएँ।

**भावार्थ**—सूर्य-चन्द्र का समन्वय ही सब निर्माण का साधन बनता है। इसके समन्वय में ही इष्टसिद्धि है और यह समन्वय ही हमें धनों का स्वामी बनाता है।

## ८०. [ अशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पौर्णमासी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## पौर्णमासी

**पूर्णा प॒श्चादु॒त पूर्णा पु॒रस्ता॒दुन्म॑ध्य॒तः पौर्ण॑मा॒सी जि॑गाय।**
**तस्यां॑ दे॒वैः सं॑वस॒न्तो म॑हि॒त्वा नाक॑स्य पृ॒ष्ठे सम्षा॑ मदेम॥ १॥**

१. पौर्णमासी के दिन चन्द्रमा पूर्ण होता है, इस दिन वह सोलह कलाओं से युक्त होता है। हमें भी सोलह कला-सम्पन्न बनने की प्रेरणा पूर्णिमा से प्राप्त होती है। हम भी 'प्राण, श्रद्धा, पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक व नाम' इन सोलह कलाओं से पूर्ण जीवनवाले बनें। यह **पौर्णमासी**=पूर्णिमा पूर्णचन्द्रोपेता होती हुई **पश्चात् पूर्णा**=पीछे से पूर्ण है,

**पुरस्तात् पूर्णा**=आगे से भी पूर्ण है, **उत**=और **मध्यतः**=बीच से भी पूर्ण होती हुई **जिगाय**=विजयी होती है। हम भी पीछे, आगे व मध्य से पूर्ण बने। हमारे एक ओर 'शक्ति' है, दूसरी ओर 'ज्ञान' और इन दोनों के बीच में 'नैर्मल्य' है। हमारे शरीर शक्ति-सम्पन्न हों, मस्तिष्क ज्ञानान्वित हों तथा मन नैर्मल्य को लिये हुए हो। २. **तस्याम्**=उस पूर्णिमा में—शक्ति, ज्ञान व नैर्मल्य के समन्वय में, **सं देवैः**=सब दिव्य गुणों के साथ **संवसन्तः**=निवास करते हुए, **महित्वा**=प्रभुपूजन के द्वारा (मह पूजायाम्) **नाकस्य पृष्ठे**=मोक्षलोक में—दुःख से असंभिन्न सुखमय लोक में, **इषा**=प्रभु प्रेरणा के द्वारा **संमदेम**=सम्यक् आनन्द का अनुभव करें।

**भावार्थ**—पूर्णिमा से पूर्णता का पाठ पढ़ते हुए हम शक्ति, ज्ञान व नैर्मल्य को अपने में पूरण करें। दिव्यगुणों से युक्त होते हुए हम प्रभु-पूजन के साथ प्रभुप्रेरणा को सुनते हुए सुखमय लोक में आनन्द से रहें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पौर्णमासी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## 'वृषभ, वाजी, पौर्णमास' प्रभु का पूजन

**वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे।**
**स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम्॥ २॥**

१. **वयम्**=हम **वृषभम्**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले, **वाजिनम्**=शक्तिशाली **पौर्णमासम्**=पौर्णमासी के चन्द्र के समान उस षोडशी प्रभु (**प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतींषी सचते स षोडशी**—य० ३२।५) को **यजामहे**=पूजित करते हैं। **सः**=वे प्रभु **नः**=हमारे लिए उस **रयिम्**=सम्पत्ति को **ददातु**=दें, जो **अक्षिताम्**=अविनाशित है—किसी से नष्ट नहीं की जा सकती तथा **अनुपदस्वतीम्**=आवश्यक उपभोगों में व्यय होती हुई भी क्षयरहित है।

**भावार्थ**—हम 'वृषभ, वाजी व पौर्णमास' प्रभु का पूजन करें। वे हमें न क्षीण होनेवाली सम्पत्ति प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## प्रजापति

**प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान।**
**यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ३॥**

१. हे **प्रजापते**=प्रजाओं के स्वामिन् प्रभो! **त्वत् अन्यः**=आपसे भिन्न अन्य कोई **एतानि विश्वा रूपाणि**=इन सब दृश्यमान पदार्थों को **परिभूः न जजान**=व्याप्त होकर पैदा नहीं कर रहा। आप ही इन सब रूपों को जन्म देनेवाले हैं। २. **यत्कामाः**=जिस कामनावाले होकर हम **ते जुहुमः**=तेरे लिए हवियाँ देते हैं, हवियों के द्वारा आपका पूजन करते हैं, **तत् नः अस्तु**=वह हमें प्राप्त हो। आपके अनुग्रह से **वयम्**=हम **रयीणां पतयः स्याम**=धनों के स्वामी हों।

**भावार्थ**—प्रभु ही सब पदार्थों में व्याप्त होकर इन्हें जन्म दे रहे हैं। हम जिस कामना से युक्त होकर प्रभु का उपासन करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण होती है। प्रभु के अनुग्रह से ही हम धनों के स्वामी बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पौर्णमासी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## पूर्णिमा यजन

**पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु।**
**ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः॥ ४॥**

१. **अह्नाम्**=दिनों तथा **रात्रीणाम् अतिशर्वरेषु**=रात्रियों के प्रबल अन्धकारों में (अतिशयिता शर्वरी येषु), अर्थात् चाहे समृद्धि का प्रकाश हो चाहे असमृद्धि का अन्धकार हो, सदा ही **पौर्णमासी**=पूर्णिमा **प्रथमा यज्ञिया आसीत्**=सर्वप्रथम संगतिकरण योग्य है। मनुष्य को सदा ही इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने जीवन को सोलह कलाओं से पूर्ण बनाने का प्रयत्न करे। २. हे **यज्ञिये**=पूजनीय व संगतिकरणयोग्य पूर्णिमे! **ये**=जो **त्वाम्**=तुझे **यज्ञैः**=यज्ञों से **अर्धयन्ति**=(ऋधु वृद्धौ) बढ़ाते हैं, अर्थात् यज्ञों को करते हुए अपने जीवन में पूर्णिमा की तरह ही सोलह कलाओं से पूर्ण बनने का प्रयत्न करते हैं, **ते अमी**=वे ये **सुकृतः**=पुण्यकर्मा लोग **नाके**=मोक्षलोक में **प्रविष्टाः**=प्रविष्ट होते हैं।

**भावार्थ**—हमारे जीवन मे चाहे समृद्धि का प्रकाश हो वा असमृद्धि का अन्धकार हो, हमें सदा ही जीवन को सोलह कलाओं से पूर्ण बनाने के लिए यत्नशील होना चाहिए। यही पूर्णिमा का यजन है। यह हमें सुखमय लोक में प्राप्त कराएगा।

## ८१. [ एकाशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### सूर्य और चन्द्र

**पूर्वापरं चरतो मायया॒तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्ण॒वम्।**
**विश्वान्यो भुवना॒ वि॒चष्ट ऋतूँर॒न्यो वि॒दधज्जायसे॒ नवः॥ १॥**

१. प्रथम सूर्य गति करता है, चन्द्र उसके पीछे गतिवाला होता है। इसप्रकार **एतौ**=ये सूर्य और चन्द्र **पूर्वापरम्**=पौर्वापर्य से, आगे-पीछे, **मायया**=प्रभु की माया (निर्माणशक्ति) से प्रेरित हुए-हुए **चरतः**=द्युलोक में गतिवाले होते हैं। **तौ**=वे दोनों शिशु की भाँति भ्रमण के कारण **शिशू**=दो बालकों की भाँति **क्रीडन्तौ**=विहरण करते हुए **अर्णवं परियातः**=(अर्णांसि उदकानि अस्मिन् सन्ति इति अर्णवः अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में विचरते हैं। २. उन दोनों में **अन्यः**=एक आदित्य **विश्वा भुवना विचष्टे**=सब लोकों को प्रकाशमय करता है और **अन्यः**=दूसरा चन्द्रमा **ऋतून् विदधत्**=वसन्तादि ऋतुओं को और तदवयवभूत मासों व अर्धमासों को बनाता हुआ **नवः जायते**=नया-नया उत्पन्न होता है। (चन्द्रमा में कलाओं के ह्रास व वृद्धि के कारण 'नया उत्पन्न होता है' ऐसा कहा गया है)।

**भावार्थ**—सूर्य प्रकाश प्राप्त कराता है, चन्द्रमा ऋतुओं का निर्माण करता है। ज्ञानी दोनों में ही प्रभु की अद्भुत महिमा को देखते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### चन्द्रमा

**नवो॑नवो भवसि॒ जाय॑मा॒नोऽह्नां॑ के॒तुरु॒षसा॑मे॒ष्यग्र॑म्।**
**भा॒गं दे॒वेभ्यो॒ वि द॑धास्या॒यन्प्र च॑न्द्रमस्तिरसे॒ दीर्घमायुः॥ २॥**

१. हे **चन्द्रमः**=चन्द्र! **जायमानः**=प्रकट शुक्लपक्ष प्रतिपदादि में एक-एक कला के आधिक्य से उत्पद्यमान होता हुआ **नवः नवः**=प्रतिदिन नूतन ही **भवसि**=होता है। **अह्नां केतुः**=दिनों का तू ज्ञापक है। चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार दिनों की गणना की जाती है 'प्रथमा, द्वितीया, तृतीया' आदि अथवा **अह्नां केतुः**=दिनों की समाप्ति पर शुक्लपक्ष में प्रतीची दिशा में तू दिखता है और कृष्णपक्ष में **उषसाम् अग्रम् एषि**=रात्रियों की समाप्ति पर उषाकाल के अग्रभाग में, पूर्व दिशा में दिखता है। २. **आयन्**=हे चक्र! आता हुआ तू **देवेभ्यः भागं विदधासि**=देवों के लिए

भाग करनेवाला है। सब यज्ञ तिथिविशेषरूप-पर्वनिबद्ध ही तो हैं। हे **चन्द्रमः**! तू **दीर्घमायुः वितिरसे**=जीवन को बढ़ानेवाला है। चन्द्र-किरणों की सुधा आयुष्य को क्यों न बढ़ाएगी?

**भावार्थ**—चन्द्रमा कलाओं की वृद्धि व ह्रास के द्वारा ही नया-नया प्रतीत होता है। शुक्लपक्ष में यह प्रतीची दिशा में दिन की समाप्ति पर उदित होता है, कृष्णपक्ष में उषाकाल के अग्रभाग में पूर्व में दिखता हैं। चन्द्र-तिथियों के अनुसार ही यज्ञ चलते हैं। यह चन्द्र अपनी सुधामयी किरणों से हमारे आयुष्य को बढ़ाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## ( सोम का अंशु ) अनूनः

**सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि।**
**अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च॥ ३॥**

१. हे **सोमस्य अंशो**=सोम के अंशु—चन्द्र के प्रकाश, चन्द्रमा को भी प्रकाशित करनेवाले प्रभो! **युधां पते**=युद्धों के स्वामिन्, युद्धों में उपासकों को विजय प्राप्त करानेवाले! **अनूनः नाम वा असि**=आप निश्चय से 'अनून' हैं। आपमें किसी प्रकार से भी कोई कमी नहीं है। हे **दर्श**=दर्शनीय अथवा सर्वद्रष्टः प्रभो! आप **मा**=मुझे भी **अनूनं कृधि**=अन्यून बनाइए। **प्रजया च धनेन च**=प्रजा के दृष्टिकोण से तथा धन के दृष्टिकोण से मैं अनून बन पाऊँ—उत्तम प्रजावाला बनूँ तथा उत्तम ऐश्वर्यवाला होऊँ।

**भावार्थ**—प्रभु चन्द्र आदि को भी प्रकाशित करनेवाले हैं, '**ज्योतिषां ज्योतिः**' हैं। हमें युद्धों में विजय प्राप्त करानेवाले हैं। सर्वद्रष्टा, न्यूनता से रहित प्रभु की कृपा से मैं भी अनून बनूँ—उत्तम प्रजा व धनवाला होऊँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

## समग्रः समन्तः

**दर्शो ऽसि दर्शतो ऽसि समग्रोऽसि समन्तः।**
**समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन॥ ४॥**

१. हे सोम! शान्त प्रभो! आप **दर्शः असि**=सर्वद्रष्टा हैं। **दर्शतः असि**=योगियों द्वारा साक्षात् करने योग्य हैं। **समग्रः असि समन्तः**=समन्तात् सम्पूर्ण हैं। आपमें किसी भी दृष्टि से कहीं भी कमी नहीं है। हे प्रभो! मैं भी **गोभिः अश्वैः**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों से, (गमयन्ति अर्थान्, अश्नुवते कर्मसु) **प्रजया**=उत्तम सन्तानों से **पशुभिः**=गवादि पशुओं से, **गृहैः धनेन**=गृह व धन के दृष्टिकोण से **समन्तः समग्रः**=समन्तात् समग्र—सब प्रकार से पूर्ण **भूयासम्**=होऊँ।

**भावार्थ**—हे प्रभो! आप सर्वद्रष्टा व दर्शनीय हैं। समन्तात् पूर्ण हैं। मुझे भी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, प्रजा, गृह व धन के दृष्टिकोण से पूर्ण कीजिए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**स्वराडास्तारपङ्क्तिः**॥

## आप्यायित

**यो ३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व।**
**आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन॥ ५॥**

१. **यः**=जो **अस्मान् द्वेष्टि**=समाज के हम सब सभ्यों से अप्रीति करता है, **यं वयं द्विष्मः**=जिसके प्रति हम प्रीतिवाले नहीं होते, हे चन्द्र! **त्वम्**=तू **तस्य प्राणेन**=उसके प्राण से **आप्यायस्व**=आप्यायित हो। उसके प्राण का अपहरण करके पूर्णता को प्राप्त हो। यहाँ काव्यमय

भाषा में कहा गया है कि इस सर्वद्वेषी पुरुष के प्राणों को अपहृत करके चन्द्र पूर्ण बने। २. **वयम्**=हम भी **गोभिः अश्वैः**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों **प्रजया पशुभिः**=उत्तम सन्तानों, गवादि पशुओं, तथा **गृहैः धनेन**=घर व धन के दृष्टिकोण से **आप्यासिषीमहि**=आप्यायित हों।

**भावार्थ**—हम समाज में किसी के प्रति भी द्वेषवाले न होते हुए इन्द्रियों, सन्तानों, पशुओं, गृह व धन के दृष्टिकोण से पूर्ण बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'इन्द्र, वरुण, बृहस्पति' द्वारा वर्धन

**यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति।**
**तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः॥ ६॥**

१. **यं अंशुम्**=जिस प्रकाश-किरण को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **आप्याययन्ति**=अपने में बढ़ाते हैं **यम् अक्षितम्**=जिस (न क्षितं यस्मात्) न नष्ट होनेवाले सोम (वीर्य) को **अक्षिताः**=(न क्षिताः) वासनाओं से अहिंसित व्यक्ति **भक्षयन्ति**=अपने अन्दर ग्रहण करते हैं, **तेन**=उसी प्रकाश-किरण व वीर्य से **इन्द्रः**=शत्रु-विद्रावक, **वरुणः**=पापनिवारक, **बृहस्पतिः**=सर्वोच्च ज्ञानी, ('इन्द्रः' शब्द ऐश्वर्यशाली का वाचक होता हुआ 'उत्तम वैश्य' का संकेत कर रहा है, 'वरुणः' पाप-निवारक राजा का संकेत करता हुआ उत्तम क्षत्रिय का प्रतिपादक है,'बृहस्पतिः' सर्वोच्च ज्ञानी ब्राह्मण का प्रतिपादन कर रहा है। अंशु का आप्यायन व अक्षित का भक्षण ही हमें 'इन्द्र,वरुण व बृहस्पति बनाएगा।') **भुवनस्य गोपः**=संसार का रक्षक प्रभु **अस्मान् आप्याययन्तु**=हमें आप्यायित करे।

**भावार्थ**—हम जितेन्द्रिय, निष्पाप, ज्ञानी व रक्षण-कार्य में प्रवृत्त होकर प्रकाश-किरणों व सोम (वीर्य) को अपने में सुरक्षित करें।

इसप्रकार प्रकाश व सोम को प्राप्त करनेवाला 'शौनक' (शुनं सुखं) अगले सूक्त का ऋषि है—

## ८२. [ द्व्यशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'सुष्टुति गव्य आजि' प्रभु का अर्चन

**अभ्य र्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।**
**इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ताम्॥ १॥**

१. हे विद्वानो! **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुतिवाले **गव्यम्**=(गोभ्यो हितम्) इन्द्रियों के लिए हितकर (प्रभु की उपासना होने पर इन्द्रिय-वृत्तियाँ बड़ी सुन्दर बनी रहती हैं), **आजिम्**=(अज गतिक्षेपणयोः) गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभु को **अभ्यचर्त**=पूजो और इसप्रकार **अस्मासु**=हममें **भद्रा द्रविणानि धत्त**=कल्याणकर धनों को धारण करो। तथा २. **नः इमं यज्ञम्**=हमारे इस यज्ञ को **देवता नयत**=देवों को प्राप्त कराओ। हम यज्ञ द्वारा देवों का सम्भावन करनेवाले बनें। **घृतस्य धाराः**=ज्ञानदीप्ति की धाराएँ, **मधुमत् पवन्ताम्**=मधुररूप से हमारी ओर बहें।

**भावार्थ**—हम प्रभुस्तवन करते हुए इन्द्रियों को शुद्ध बनाएँ, गतिशीलता द्वारा सब बुराइयों को दूर करें। शुभ धनों का संग्रह करें। यज्ञों द्वारा वायु आदि देवों का शोधन करें। हमारे लिए आचार्य मधुरता से ज्ञानधाराओं को प्रवाहित करें।

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीबृहती**॥

## 'क्षत्र, वर्चस्, बल, प्रजा, आयु' का धारण

**मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।**
**मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्॥ २॥**

१. **अग्रे**=सर्वप्रथम मैं **मयि**=अपने में **अग्निं गृह्णामि**=उस अग्रणी प्रभु को धारण करता हूँ, परिणामतः **क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल से, प्राणशक्ति से (वर्चसा) तथा मनोबल से युक्त होता हूँ। प्रभु का धारण 'क्षत्र, वर्चस् व बल' देता है। २. **मयि प्रजां दधामि**=मैं इस प्रभु-पूजन से उत्तम सन्तान को धारण करता हूँ। **मयि आयुः**=अपने में आयुष्य को धारण करता हूँ। **स्वाहा ( सु आह )**=सबसे उत्तम यह कथन है कि **मयि अग्निम्**=अपने में अग्नि को धारण करता हूँ। अग्नि के धारण से इन सबका धारण हो ही जाता है।

**भावार्थ**—अपने अन्दर प्रभु को धारण करने से हम 'क्षत्र, वर्चस्, बल, प्रजा व आयु' को धारण कर रहे होते हैं।

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**जगती**॥

## क्षत्रेण सुयमम्

**इहैवाग्रे अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचित्ता निकारिणः।**
**क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः॥ ३॥**

१. हे **अग्रे**=अग्रणी प्रभो! **इह एव**=यहाँ—हम उपासकों में ही **रयिं अधिधारय**=ऐश्वर्य को आधिक्येन स्थापित कीजिए, जो **पूर्वचित्ताः**=(मतिपूर्व=Intentionally, Knowingly) जानबूझकर—पहले से ही चित्त बनाकर **निकारिणः**=हमारा अपकार करनेवाले हैं, वे **त्वा**=तुझे **मा निक्रन्**=अपने अधीन न कर पाएँ, अपने अनुकूल न कर पाएँ। २. हे **अग्ने**=प्रभो! **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए हममें **क्षत्रेण सुयमम् अस्तु**=बल के साथ उत्तम संयम हो। हे प्रभो! **ते**=आपका **उपसत्ता**=उपासक **अनिष्टृतः**=किसी से भी हिंसित न होता हुआ, अतिरस्कृत प्रभाववाला, **वर्धताम्**=वृद्धि को प्राप्त हो।

**भावार्थ**—प्रभु हमें धन दें। हमारा अपमान करनेवाले प्रभु के प्रिय न बनें। प्रभु-प्राप्ति के लिए हम बल के साथ संयमवाले हों। प्रभु के उपासक बनकर हम अहिंसित होते हुए वृद्धि को प्राप्त हों।

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'प्रकाशक व व्यापक' प्रभु

**अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।**
**अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश॥ ४॥**

१. वह **अग्निः**=अग्रणी (प्रकाशमान्) प्रभु **उषसाम् अग्रम् अनु अख्यत्**=उषाकालों के भी पूर्वभाग को क्रम से प्रकाशित करता है। वह **प्रथमः**=सर्वत्र विस्तृत **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु ही **अहानि अनु ( अख्यत् )**=दिनों को अनुक्रम से प्रकाशित करता है। २. वही प्रभु **सूर्यः अनु ( सूर्यं )**=सूर्य को प्रकाशित करता है, **उषसः अनु**=उषाकालों को प्रकाशित करता है, **रश्मीन् अनु**=समस्त रश्मियों को (प्रकाशमय पिण्डों को) प्रकाशित करता है। वह प्रभु ही **द्यावापृथिवी आविवेश**=द्युलोक व पृथिवीलोक में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वे प्रभु सब पिण्डों व लोकों में अनुप्रविष्ट हो रहे हैं।

**भावार्थ**—प्रभु ही उषाकालों, दिनों, सूर्य व अन्य ज्योतिर्मय पिण्डों को प्रकाशित कर रहे हैं। वे ही द्यावापृथिवी में सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं।

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'ब्रह्माण्ड के विस्तारक' प्रभु

**प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत्प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।**
**प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन्प्रति द्यावापृथिवी आ ततान॥ ५॥**

१. **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **उषसाम् अग्रं प्रति अख्यत्**=उषाओं के अग्रभाग को प्रतिदिन प्रकाशित करते हैं। वे प्रभु ही **प्रथमः**=सबके आदिमूल व **जातवेदाः**=सर्वज्ञ हैं, **अहानि प्रति ( अख्यत् )**=सब दिनों को प्रकाशित करते हैं। २. **सूर्यस्य रश्मीन्**=सूर्य की रश्मियों को **च**=भी **पुरुधा**=नाना प्रकार से (विविध वर्णयुक्त करके) **प्रति ( अख्यत् )**=प्रकाशित करते हैं। **द्यावापृथिवी प्रति आतनान**= द्यावापृथिवी के प्रत्येक पदार्थ में आतत (व्यापक) हो रहे हैं—प्रत्येक पदार्थ में अपने प्रकाश को विस्तृत कर रहे हैं।

**भावार्थ**—वे प्रभु 'उषाओं को, दिनों को, सूर्यरश्मियों को व द्यावापृथिवी के प्रत्येक पदार्थ को' प्रकाशित कर रहे हैं।

ऋषिः—**शौनकः ( संपत्कामः )**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## घृतं ज्ञानदीप्ति

**घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे।**
**घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने॥ ६॥**

१. 'घृ क्षरणदीप्त्योः' से बना 'घृतं' शब्द दीप्ति का वाचक है। हे **अग्ने**=परमात्मन्! **ते घृतम्**=आपकी दीप्ति **दिव्ये**=दिव्य गुणयुक्त **सधस्थे**=आत्मा व परमात्मा के मिलकर रहने के स्थान 'हृदय' में है। पवित्र हृदय में प्रभु का प्रकाश दिखता है। इस **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति से ही **मनुः**=विचारशील व्यक्ति **अद्य**=अब **त्वां समिन्धे**=आपको दीप्त करता है, आपके प्रकाश को देखता है। २. **देवीः नप्त्यः**=दिव्य गुणोंवाली न पतनशील प्रजाएँ **ते घृतम्**=आपकी ज्ञानदीप्ति को **आवहन्तु**=प्राप्त करें। हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए ये **गावः**=वेदवाणियाँ हमारे अन्दर **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति का **दुहताम्**=प्रपूरण करें।

**भावार्थ**—पवित्र हृदय में प्रभु का प्रकाश होता है। ज्ञानी मनुष्य ज्ञानदीप्ति द्वारा प्रभु को अपने में समिद्ध करता है। न पतनशील प्रजाएँ आपके प्रकाश को प्राप्त करती हैं, आपकी प्राप्ति के लिए ये वेदवाणियाँ हमारे अन्दर ज्ञान का प्रपूरण करें।

ज्ञानदीप्ति प्राप्त करके मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त होता हुआ वास्तविक सुख का निर्माण कर पाता है, अतः 'शुनःशेप' सुख का निर्माण करनेवाला होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

# ८३. [ त्र्यशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**शुनःशेपः**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## प्रभु का सुगुप्त ज्योतिर्मय गृह

**अप्सु ते राजन्वरुण गृहो हिरण्ययो मितः।**
**ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु॥ १॥**

१. हे **राजन्**=(राजृ दीप्तौ) प्रकाशमय! **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **ते**=आपका **मितः**=( In

secret) गुप्त **हिरण्ययः**=ज्योतिर्मय **गृहः**=घर **अप्सु**=प्रजाओं में है। प्रभु हम सबके हृदयों में रह रहें है। यह हृदय प्रभु का सुगुप्त ज्योतिर्मय गृह है। २. **ततः**=क्योंकि हम सबका हृदय प्रभु का घर है, वह **धृतव्रतः**=सब नियमों को धारण करनेवाला **राजा**=शासक प्रभु **सर्वा धामानि**=हमारे सब स्थानों को 'शरीर,मन व मस्तिष्क' रूप त्रिलोकी को **मुञ्चतु**=रोग, मलिनता व कुण्ठता आदि दोषों से मुक्त करे।

**भावार्थ**—प्रभु 'धृतव्रत, राजा व वरुण हैं, प्रजाओं के हृदयों में उनका निवास है। वे प्रभु हमें रोग, मलिनता व कुण्ठता से मुक्त करके 'स्वस्थ शरीरवाला, निर्मल मनवाला व तीव्र बुद्धिवाला' बनाएँ।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

## आपः, अघ्न्याः, वरुण

**धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।**
**यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः॥ २॥**

१. हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **राजन्**=दीप्त प्रकाशमय प्रभो! आप **धाम्नः**=प्रत्येक स्थान से **इतः नः मुञ्च**=इस पापवृत्ति से हमें छुड़ाइए। हम 'शरीर, मन व बुद्धि' से किसी का हिंसन न करें। २. हे प्रभो! **यत्**=जब हम **आपः**='प्रभु सर्वव्यापक' है (अप व्याप्तौ) **अघ्न्याः इति**=ये वेदवाणियाँ, वेदधेनुएँ अहन्तव्य हैं, अथवा **वरुण इति यत् ऊचिम**=जो हम यह कहते हैं कि वे प्रभु पापनिवारक हैं' **ततः**=तब हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **नः मुञ्च**=हमें पाप से छुड़ाइए ही।

**भावार्थ**—प्रभु हमें प्रत्येक स्थान से निष्पाप बनाएँ। हम प्रभु को सर्वव्यापक जानें (आपः), वेदवाणियों को अहन्तव्य समझें (अघ्न्याः), इनका प्रतिदिन स्वाध्याय करें तथा प्रभु का पापनिवारकरूप (वरुण) में स्मरण करें, इससे सब पापों से वरुणप्रभु हमें मुक्त करें।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## 'उत्तम, अधम व मध्यम' पाश-विच्छेद

**उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।**
**अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ ३॥**

१. हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय**=उत्तम पाश को भी हमसे पृथक् करके नष्ट कीजिए। **'सत्त्वं सुखे सञ्जयति'** सत्त्वगुण भी तो हमें योग व स्वाध्याय के आनन्द में आसक्त कर देता है, उसमें फँसे हुए हम आवश्यक रक्षात्मक कर्मों को न भूल जाएँ। **अधमं अव ( श्रथाय )**=निकृष्ट पाश को हमसे दूर कीजिए, तमोगुण के 'प्रमाद, आलस्य, निद्रा' रूप पाश में हम न फँसे रहें। **मध्यमं वि ( श्रथाय )**=इस मध्यम, अर्थात् रजोगुण के पाश को भी हमसे अलग कीजिए। धन की तृष्णा में फँसे हुए हम हर समय इसकी प्राप्ति की भाग-दौड़ में ही न रह जाएँ। २. **अध**=अब **वयम्**=हम हे **आदित्य**=(आदानात् आदित्यः) सब गुणों का आदान करनेवाले व सब बन्धनों का खण्डन (दाप् लवने) करनेवाले वरुण! **तव व्रते**=आपके उपदिष्ट व्रतों में **अनागसः**=निष्पाप जीवनवाले होते हुए **अदितये**=अखण्डितत्व व अविनाश के लिए हों।

**भावार्थ**—हम 'सत्त्व, रज व तम' के 'सुख, तृष्णा व प्रमादालस्य—निद्रा' रूप बन्धनों को परे फेंककर प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर चलते हुए अखण्डित जीवनवाले हों।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

## 'दुःष्वप्न्य=दुरित' दूरीकरण

**प्रास्मत्पाशान्वरुण मुञ्च सर्वान्य उत्तमा अधमा वारुणा ये।**
**दुःष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥ ४॥**

१. हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **अस्मत्**=हमसे **सर्वान् पाशान् प्रमुञ्च**=सब पाशों को मुक्त कीजिए। **ये**=जो पाश **उत्तमाः**=उत्तम, अर्थात् सत्त्वगुण के सुखरूप पाश हैं, **अधमाः**=जो तमोगुण के प्रमाद आदि पाश हैं, **ये वारुणाः**=जो हमें धर्म के मार्ग से वारित करके छल-छिद्र से धन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं, २. **दुःष्वप्न्यम्**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत **दुरितम्**=दुराचरण को **निःष्व**=(निस्सुव) हमसे निर्गत कीजिए। **अथ**=अब पाश-विमोचन होने पर हम **सुकृतस्य लोकम्**=पुण्य के लोक को **गच्छेम**=प्राप्त हों, सदा पुण्य कार्यों को ही करनेवाले बनें।

**भावार्थ**—प्रभु हमारे सब पाशों को पृथक् करें। हम दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत दुराचरणों से पृथक् होकर सुकृत कर्मों के लोक में गतिवाले हों।

सब बन्धनों से ऊपर उठकर अपने को तपस्या की अग्नि में परिपक्व करनेवाला यह व्यक्ति 'भृगु' बनता है और यही अगले सूक्त में इसप्रकार प्रार्थना करता है—

## ८४. [ चतुरशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

## रोगों का दूरीकरण व बल-धारण

**अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह।**
**विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन्मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम्॥ १॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **अनाधृष्यः**=किसी से भी धर्षण के योग्य नहीं हैं। **जातवेदाः**=सर्वज्ञ हैं, **अमर्त्यः**=अविनाशी हैं। **विराट्**=विशिष्ट दीप्तिवाले आप **क्षत्रभृत्**=बल का धारण करते हुए **इह दीदिहि**=हमारे जीवन में दीप्त होओ। २. **विश्वाः अमीवाः**=सब रोगों को **प्रमुञ्चन्**=हमसे पृथक् करते हुए आप **मानुषीभिः**=मानवोचित **शिवाभिः**=कल्याणी क्रियाओं के द्वारा **अद्य**=आज **नः गयम्**=हमारे इस घर को **परिपाहि**=रक्षित कीजिए।

**भावार्थ**—'अनाधृष्य, जातवेदा, अमर्त्य, विराट्' प्रभु हमारे जीवन में बल धारण करें। वे प्रभु हमें नीरोग बनाकर मानवोचित कल्याणी क्रियाओं में प्रेरित करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## क्षत्रम् ओजः

**इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।**
**अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम्॥ २॥**

१. हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! आप **क्षत्रम्**=बल तथा **वामम् ओजः**=सेवनीय ओज को **अभि**=लक्ष्य करके **अजायथाः**=प्रादुर्भूत होते हैं। आपके प्रादुर्भाव से उपासक के जीवन में क्षत्र और ओज की स्थापना होती हैं। २. हे **चर्षणीनां वृषभ**=श्रमशील मनुष्यों पर सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभो! आज **अमित्रायन्तम्**= अमित्र (शत्रु) की भाँति आचरण करते हुए **जनम्**=मनुष्य को **अपानुदः**=हमसे दूर कीजिए **उ**=और **देवेभ्यः**=देववृत्ति के पुरुषों के लिए **उरुं लोकं अकृणोः**=विस्तीर्ण स्वर्ग—प्रकाशमयलोक को कीजिए।

**भावार्थ**—हृदय में प्रभु के प्रादुर्भाव से 'क्षत्र और ओज' की प्राप्ति होती है। प्रभु हमारे

शत्रुओं को दूर करके हमारे लिए उत्तम प्रकाशमय लोक को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## मृगः, न भीमः

**मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात्परस्याः।**
**सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व॥ ३॥**

१. वे इन्द्र **मृगः**=अन्वेषणीय हैं, उपासक 'योग' द्वारा प्रभु को हृदय में देखने का प्रयत्न करते हैं। **न भीमः**=वे प्रभु भयंकर नहीं हैं। **कुचरः**=सर्वत्र पृथिवी पर विचरण करनेवाले हैं (क्वायं न चरतीति वा) अथवा कहाँ नहीं हैं, अर्थात् सर्वत्र हैं, **गिरिष्ठाः**=वेदवाणियों में स्थित हैं, **परस्याः परावतः**=अतिशयेन दूर लोक से भी **आजगम्यात्**=हमें प्राप्त होते हैं। २. हे प्रभो! **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक! आप **सृकम्**=सरणशील **तिग्मम्**=तीव्र **पविम्**=वज्र को **संशाय**=सम्यक् तीक्ष्ण कीजिए। **शत्रून् विताढि**=उस वज्र से शत्रुओं का ताड़न कीजिए और **मृधः विनुदस्व**=संग्रामोद्युक्त—युयुत्सु अन्य शत्रुओं को भी विशेषरूप से दूर प्रेरित कीजिए।

**भावार्थ**—प्रभु 'अन्वेषणीय, प्रिय, सर्वव्यापक व वेदप्रतिपाद्य' हैं। वे प्रभु हमें प्राप्त हों और हमारे शत्रुओं को दूर प्रेरित करनेवाले हों।

शत्रुओं को नष्ट करके स्थिरवृत्तिवाला यह उपासक 'अथर्वा' बनता है। यह अथर्वा अगले तीन सूक्तों का ऋषि है—

## ८५. [ पञ्चाशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( स्वस्त्ययनकामः )**॥ देवता—**तार्क्ष्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## वाजिनं तार्क्ष्यम्

**त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।**
**अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम॥ १॥**

१. **त्यम्**=उस **तार्क्ष्यम्**=(तृक्ष गतौ) सर्वव्यापक प्रभु को **उ सु**=निश्चय से सम्यक् **स्वस्तये**=कल्याण की प्राप्ति के लिए **इह**=यहाँ **आहुवेम**=हम पुकारते हैं। जो प्रभु **वाजिनम्**=अन्न व बलवाले हैं, **देवजूतम्**=(जूतिः गतिर्वा प्रीतिर्वा) देवों में गये हुए, देवों में निवास करनेवाले व देवों से प्रीतिवाले हैं, **सहोवानम्**=शत्रुओं को जीतने की शक्तिवाले हैं, **रथानां तरुतारम्**=सब रथों के प्रेरक हैं **( भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया )**। **अरिष्टनेमिम्**=(नेमिः वज्रम्—नि० २.२०) अहिंसित वज्रवाले हैं, **पृतनाजिम्**=सब शत्रु-सैन्यों का विजय करनेवाले हैं और **आशुम्**=शीघ्रता से सब कार्यों को करनेवाले हैं।

**भावार्थ**—हम प्रभु को कल्याण के लिए पुकारते हैं। वे प्रभु सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, देवों के प्रति प्रीतिवाले, शत्रुओं का मर्षण करनेवाले, शरीररथों के प्रेरक, अहिंसित वज्रवाले, शत्रु-सैन्यों के विजेता व शीघ्रता से कार्यों को करनेवाले हैं।

## ८६. [ षडशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा ( स्वस्त्ययनकामः )**॥ देवता—**तार्क्ष्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## त्राता अविता

**त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।**
**हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान्कृणोतु॥ १॥**

१. **त्रातारम् इन्द्रं हुवे**=उस रक्षक सर्वशक्तिमान् प्रभु को पुकारता हूँ। **अवितारम्**=परमैश्वर्य के द्वारा प्रीणित करनेवाले **इन्द्रम्**=प्रभु को पुकारता हूँ। **हवेहवे**=प्रत्येक आह्वान पर **सुहवम्**=सुगमता से पुकारने योग्य **शूरम्**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को पुकारता हूँ। २. **नु**=अब **शक्रम्**=शक्तिशाली **पुरुहूतम्**=बहुतों से पुकारे गये **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारता हूँ। वह **मघवान्**=सब ऐश्वर्योंवाला **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः**=हमारा **स्वस्ति**=कल्याण **कृणोतु**=करे।

**भावार्थ**—वे प्रभु हमारा रक्षण, प्रीणन व कल्याण करते हैं। उन शक्तिशाली, ऐश्वर्य-सम्पन्न प्रभु को हम पुकारते हैं।

## ८७. [ सप्ताशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**रुद्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

### 'सर्वत्र प्रविष्ट, सर्वनिर्माता' प्रभु

**यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।**
**य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये॥ १॥**

१. **यः रुद्रः**=जो शत्रुओं को रुलानेवाले प्रभु **अग्नौ**=अग्नि में यष्टव्यत्वेन **आविवेश**=प्रविष्ट हो रहे हैं, **यः**=जो **अप्सु अन्तः**=जलों में वरुणात्मना प्रविष्ट हैं, **यः वीरुधः ओषधीः**=जो विविधरूप से उगनेवाली फलपाकान्त लताओं में सोमात्मना प्रविष्ट हैं, **यः**=जो प्रभु **इमा विश्वा भुवनानि**=इन सब भुवनों को **चाक्लृपे**=क्लृप्त (निर्मित) करते हैं, **तस्मै**=उस **रुद्राय**=सर्वजगत् स्रष्टा, सर्वजगदनुप्रविष्ट रुद्रात्मा **अग्नये**=अग्रणी प्रभु के लिए **नमः अस्तु**=नमस्कार हो।

**भावार्थ**—वे रुद्ररूप प्रभु अग्नि, जल व लताओं में अनुप्रविष्ट हो रहे हैं। प्रभु ही सब भुवनों का निर्माण करते हैं। उस रुद्रात्मा अग्नि के लिए नमस्कार हो।

रुद्र का उपासक वीरुध्=ओषधियों द्वारा सर्प-विष का विनाश करनेवाला यह 'गरुत्मान्' (गरुड़) बनता है (गरुत्=Eating, swallowing)। यह विष को मानो खा ही जाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ८८. [ अष्टाशीतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**बृहती**॥

### सर्प-विष चिकित्सा

**अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद्वा अपृक्थाः।**
**अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि॥ १॥**

१. हे सर्पविष! **अपेहि**=तू हमसे दूर हो। **अरिः असि**=तू हमारा शत्रु है। तू **वा**=निश्चय से **अरिः**=शत्रु **असि**=है। **विषे**=(अर्शाद्यच्) विषवाले सर्प में **विषम् अपृक्थाः**=विष को सम्पृक्त कर। **इत् वा**=निश्चय से **विषम् अपृक्थाः**=विष को विषवाले सर्प से ही संयुक्त कर। २. हे विष! तू जिसका विष है **तम्**=उस **अहिं एव**=आहन्ती साँप को ही **अभ्यपेहि**=लक्ष्य करके समीपता से प्राप्त हो और वहाँ जाकर उस सांप को **जहि**=विनष्ट कर। साँप जिसे काटे, वह यदि उस साँप को काट ले तो सर्प-विष सर्प में ही लौटकर साँप का विनाश कर देता है।

**भावार्थ**—सर्प-विष की सर्वोच्च चिकित्सा यही है कि सर्पदष्ट पुरुष सर्प को ही डस ले। सर्प का विष सर्प में ही चला जाएगा और उसे ही मारनेवाला बनेगा।

अगले सूक्त का ऋषि 'सिन्धुद्वीप' है (सिन्धवो द्वीपो यस्य, द्वीप=A place of refuge,

protection) यह जलों में रक्षण को ढूँढता हुआ प्रार्थना करता है कि—

## ८९. [ एकोननवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### मेघजल तथा गोदुग्ध के सेवन से 'वर्चस्' की प्राप्ति

**अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।**
**पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १ ॥**

१. **दिव्याः अपः**=(दिवि भवाः) अन्तरिक्ष के मेघ से प्राप्त होनेवाले जलों को **अचायिषम्**=मैंने पूजित किया है। इन्हें स्नानादि के लिए मैंने स्तुत किया है। **रसेन समपृक्ष्महि**=हम इन जलों के रस से संगत हुए हैं। २. इन दिव्य जलों के प्रयोग के साथ **अग्ने**=हे प्रभो! **पयस्वान्**=प्रशस्त दूधवाला मैं **आगमम्**=आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ। **तं मा**=उस मुझे **वर्चसा संसृज**=वर्चस से—प्राणशक्ति से संसृष्ट कीजिए।

**भावार्थ**—आकाश से प्राप्त होनेवाले मेघजल तथा प्रशस्त गोदुग्ध का सेवन हमें वर्चस्वी बनाता है।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### वर्चस्, प्रजा, आयु

**सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।**
**विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ २ ॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **मा**=मुझे **वर्चसा संसृज**=वर्चस् से युक्त कीजिए। **प्रजया सम्**=उत्तम सन्तान से युक्त कीजिए, **आयुषा सम्**=आयुष्य से संगत कीजिए। २. **अस्य मे**=मेरे अभिमत को **देवाः विद्युः**=देव जानें, इसका ध्यान करें, इसे पूर्ण करने का ध्यान रक्खें। माता, पिता, आचार्य आदि देव मेरी इष्ट-प्राप्ति में सहायक हों। **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **ऋषिभिः**=तत्त्वद्रष्टा मुनियों के साथ **विद्यात्**=मेरा ध्यान रक्खें, मेरे अभिमत को प्राप्त कराने का अनुग्रह करें।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हमें 'वर्चस्, उत्तम प्रजा व दीर्घजीवन' प्राप्त हो। देवरूप माता, पिता, आचार्य हमें इसप्रकार बनाएँ कि हम अपने अभिमत को सिद्ध कर सकें। प्रभुकृपा से तत्त्वद्रष्टा अतिथि भी हमें इसी मार्ग पर ले-चलें।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### 'अवद्य मल' निरास

**इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्।**
**यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥ ३ ॥**

१. हे **आपः**=आप्त पुरुषो! (आपो वै नरसूनवः) गतमन्त्र के देवो व ऋषियो! **इदम्**=यह **अवद्यं च**=जो निन्दनीय, गर्ह्य कर्म है, **यत् च मलम्**=और मुझमें जो मलिन दुराचरण है, **अनृतम्**=जो अनृत (असत्य) है, **यत् च**=और जो **अभीरुणम्**=ऋण लेकर उसके अपलाप के लिए **शेपे**=शपथ खाता हूँ, उस सब पाप को मुझसे दूर करो।

**भावार्थ**—आप्त-पुरुषों के सम्पर्क में रहते हुए हम 'निन्दनीय-मलिन कर्मों को, द्रोह व अनृत को तथा अपलाप को' कभी न करें।

**सूचना**—'**अभीरुणं शेपे**' का भाव 'अनपराधी को कठोर वचन कहना' भी है। यह भी

अनुचित ही है।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिपदानिचृत्परोष्णिक्** ॥

## एधः समित् तेजः

**एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय। तेजोऽसि तेजो मयि धेहि॥ ४॥**

१. हे अग्ने! **एधः असि**=(एध वृद्धौ) आप सदा से बढ़े हुए हो, **एधिषीय**=मैं भी 'स्वास्थ्य, नैर्मल्य व ज्ञान' की दृष्टि से बढ़ा हुआ बनूँ। हे प्रभो! आप **समित् असि**=(इन्धृ) सम्यक् दीप्त हैं, मैं भी **समेधिषीय**=सम्यक् दीप्त बनूँ। आप **तेजः असि**=तेज के पुञ्ज हैं, **मयि तेजः धेहि**=मुझमें तेज का आधान कीजिए।

**भावार्थ**—सदा से वृद्ध प्रभु मुझे बढ़ाएँ। दीप्त प्रभु की उपासना मुझे भी दीप्त करे, तेजस्वी प्रभु मुझमें तेज का आधान करें।

तेजस्वी बनकर यह अंग-प्रत्यंग में रसवाला 'अंगिराः' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

## ९०. [ नवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अंगिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

## दास के ओज का दम्भन

**अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्। ओजो दासस्य दम्भय॥ १॥**

१. हे अग्ने! (प्रभो अथवा राजन्!) **व्रततेः**=किसी बेल की **पुराणवत्**=पुरानी **गुष्पितम्**=झाड़-झंकाड़-सी बनी हुई सूखी डालियों को जिस प्रकार माली खोज-खोजकर काट डालता है, उसी प्रकार आप **दासस्य**=(दस् उपक्षये) औरों का उपक्षय करनेवालों में सर्वाग्रणी पुरुष को (दासेषु उत्तमः दास्यः) **अपिवृश्च**=छिन्नांग कर डाल, इसप्रकार **ओजः दम्भय**=इसके ओज को विनष्ट कर दे।

**भावार्थ**—राजा का कर्तव्य है कि राष्ट्र में दुष्ट पुरुषों को इसप्रकार छिन्नांग कर दे जैसेकि माली बेलों की सूखी, पुरानी डालियों को काट डालता है। राजा औरों का उपक्षय करनेवाले के ओज को विनष्ट कर दे।

ऋषिः—**अंगिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती** ॥

## दास के वसु का विभाजन

**वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै।**
**म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते॥ २॥**

१. **अस्य**=इस पुरोवर्ती शत्रुभूत जार के **संभृतं तत् वसु**=एकत्र किये हुए उस धन को **वयम्**=हम **इन्द्रेण विभजामहै**=शत्रुविद्रावक राजा के साथ विभक्त करते हैं। इस धन का एकभाग राजकोष को जाता है और दूसरा भाग जार से पीड़ित परिवार को प्राप्त होता है। २. हे जार! **ते**=तेरे **भ्रजः**=दीप्त तेज को तथा **शिभ्रम्**=(शीभृ कत्थने) आत्मश्लाघा को, **वरुणस्य व्रतेन**=पाप-निवारक देव के कर्म से—पापों को रोकनेवाले राजा की शासनव्यवस्था से **म्लापयामि**=क्षीण करता हूँ।

**भावार्थ**—राजा जार के धन का अपहरण करके आधा राजकोश में तथा आधा पीड़ित परिवार की सहायता के लिए दे दे। वह उचित दण्ड के द्वारा इस जार के तेज व घमण्ड को नष्ट करनेवाला हो।

ऋषिः—**अंगिराः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदाभुरिग्जगती** ॥

## अवस्थ के मान व बल का विनाश

**यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः। अवस्थस्य क्रदीवतः**
**शाङ्कुरस्य नितोदिनः यदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु॥ ३॥**

१. हे राजन्! **अवस्थस्य**=(अव-स्थ) इस नीचे दर्जे के, **क्रदीवतः**=(क्रद् आह्वाने) गँवारों की भाँति लड़ाई के लिए ललकारनेवाले, **शाङ्कुरस्य**=कील के समान सबके मन में चुभनेवाले, **नितोदिनः**=निश्चय से पीड़ित करनेवाले इस दुष्ट का **यत् आततम्**=जो बल फैला हुआ है **तत् अवतनु**=उसे घटा दो, **यत् उत्ततम्**=जो पद उन्नत अवस्था तक पहुँचा हो **तत्**=उस पद को **नितनु**=नीचा कर दो। दुष्ट की शक्ति व मान का कम करना आवश्यक ही है। २. ऐसा इसलिए कीजिए **यथा**=जिससे इसका **शेपः**=कामवासना सम्बन्धी मद **अपायातै**=दूर हो जाए **च**=और वह दुष्ट **स्त्रीषु**=स्त्रियों में **अनावयाः असत्**=न पहुँच सके—उन्हें प्रलोभन में फँसाकर उनका मान नष्ट न कर सके। (**अनावयाः**=अनागच्छत्)।

**भावार्थ**—राष्ट्र में यदि कोई पुरुष दुष्ट व व्यभिचार की वृत्तिवाला है तो राजा को उसे नष्ट-बल व नष्ट-मानवाला कर देना चाहिए ताकि वह बल व मान के रोब से अनाचार न कर सके।

अनाचार से दूर रहनेवाला 'अथर्वा' (न डाँवाडोल होनेवाला) अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## ९१. [ एकनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**चन्द्रमाः, इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## सुत्रामा स्ववान् सुमृडीकः

**इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।**
**बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ १॥**

१. **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली, **सुत्रामा**=उत्तमता से रक्षण करनेवाले, **स्ववान्**=धनवाले, **विश्ववेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु **अवोभिः**=रक्षणों के द्वारा **सुमृडीकः भवतु**=उत्तम सुख देनेवाले हों। २. ये प्रभु **द्वेषः (द्वेषांसि)**=द्वेष्टाओं को **बाधताम्**=हिंसित करें, **अभयं नः कृणोतु**=हमारे लिए अभयता (प्रदान) करें। हम **सुवीर्यस्य पतयः स्याम**=उत्तम शक्ति के स्वामी हों। द्वेष विष पैदा करके शक्ति का ह्रास करता है, निर्द्वेष जीवनवाले हम सुवीर्य को प्राप्त करें।

**भावार्थ**—प्रभु के रक्षण में निर्द्वेष जीवन बिताते हुए हम निर्भय बनें तथा सुवीर्य के पति हों।

## ९२. [ द्विनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**चन्द्रमाः, इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## सुमति+सौमनस

**स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।**
**तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम॥ १॥**

१. **सुत्रामा**=सुष्ठु त्राता **स्ववान्**=धनवान् **सः इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अस्मत्**=हमसे **आरात् चित्**=दूर ही **द्वेषः**=द्वेष्टाओं को **सनुतः**=अन्तर्हित करते हुए **युयोतु**=पृथक् करें। २. **यज्ञियस्य**=यज्ञार्ह—पूजनीय **तस्य**=उस प्रभु की **सुमतौ**=श्रेष्ठ अनुग्रहबुद्धि में वर्त्तमान **वयम्**=हम **भद्रे सौमनसे अपि स्याम**=कल्याणकर सुमनस्कता में ही हों।

**भावार्थ**—प्रभु के रक्षण में हम द्वेष से दूर होते हुए सुमति व सौमनसवाले हों।

सुमति व सौमनस से परिपक्व हुआ-हुआ यह 'भृगु' व 'अङ्गिराः' (अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रस-वाला) बनता है और प्रभु की सहायता से सब शत्रुओं पर विजय पाने की अभिलाषा करता है।

## ९३. [ त्रिनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

### मन्युना इन्द्रेण

**इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥ १ ॥**

१. **मन्युना** (मन्यतिर्दीप्तिकर्मा)=(मन्युमता) दीप्तिवाले **इन्द्रेण**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभु की सहायता से **वयम्**=हम **पृतन्यतः**=संग्राम को चाहनेवाले युयुत्सु शत्रुओं को **अभिष्याम**=अभिभूत करनेवाले हों। हम **वृत्राणि**=ज्ञान पर पर्दा डाल देनेवाले पापों को (काम, क्रोध आदि शत्रुओं को) **अप्रति**=प्रतिपक्ष को शेष न रहने देते हुए **घ्नन्तः**=विनष्ट करते हुए, शत्रुओं को जीतनेवाले हों।

**भावार्थ**—दीप्तिमान् प्रभु को साथी पाकर हम संग्रामेच्छु शत्रुओं को पराजित करें। ज्ञान के आवरण बने हुए इन काम-क्रोध आदि को प्रभुकृपा से निःशेष कर डालें।

काम-क्रोध को समाप्त करके यह 'अथर्वा'=न डाँवाडोल होता है। अगले सूक्त में यही ऋषि है—

## ९४. [ चतुर्नवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### केवलीः विशः

**ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽव सोमं नयामसि। यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥ १ ॥**

१. **ध्रुवेण हविषा**=स्थिर हवि (कर) के द्वारा **ध्रुवं सोमम्**=स्थिर सोम-स्वभाववाले राजा को **अवनयामसि**=गाड़ी से आसन्दी के प्रति अवतीर्ण करते हैं, अर्थात् राजा को गद्दी पर बिठाते हैं, और उसके लिए स्थिर रूप से कर देते हैं, तभी तो वह राष्ट्र का रक्षण कर पाता है। बिना कोष के कोई भी कार्य सम्भव नहीं। २. हम इसलिए इन्हें गद्दी पर बिठाते हैं **यथा**=जिससे कि **इन्द्रः**=यह शत्रु-विद्रावक प्रभु **नः**=हमें **केवली संमनसः विशः**=किसी अन्य पर अनाश्रित तथा परस्पर संगत मनवाली प्रजाएँ **करत्**=बनाये।

**भावार्थ**—राजा को निश्चितरूप से कर देने से ही राजा राष्ट्र का रक्षण कर पाएगा, अतः प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह निश्चितरूप से राजा के लिए हवि (कर) दे। राजा प्रजा को किसी अन्य देश पर अनाश्रित, आत्मनिर्भर (Self sufficient) तथा हम प्रजाओं को परस्पर उत्तम मनवाला बनाये।

अगले दो सूक्तों का ऋषि 'कपिञ्जल' है—यह (**कपि-जल**=to encircle with a net) वानर के समान चञ्चलतावाली 'काम-क्रोध' रूप वृत्तियों को घेरकर समाप्त करता है (जल घातने)—

## ९५. [ पञ्चनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**कपिञ्जलः** ॥ देवता—**गृध्रौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### श्यावौ गृध्रौ

**उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः।**
**उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥ १ ॥**

१. **अस्य**=इस पुरुष के **हृदः उच्छोचनौ**=हृदय को उत्कर्षेण शुष्क करनेवाले (शोकान्वित करनेवाले) ये काम-क्रोध **विथुरौ**=इसकी व्यथा को बढ़ानेवाले हैं। ये **श्यावौ**=गतिशील **गृध्रौ इव**=दो गीधों के समान **द्याम् उत्पेततुः**=आकाश में ऊपर उठते हैं। ये काम-क्रोध बढ़ते ही जाते हैं। ये **अस्य**=इस पुरुष के **उच्छोचनप्रशोचनौ**=महान् शोक का कारण बनते हैं और इसे प्रकर्षेण सुखानेवाले होते हैं।

**भावार्थ**—'काम-क्रोध' मनुष्य के प्रबल शत्रु हैं। ये सेवन से बढ़ते ही जाते हैं। ये उसके शोक व व्यथा के बढ़ानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**कपिञ्जलः**॥ देवता—**गृध्रौ**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

## कुर्कुरौ इव, वृकौ इव

**अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव।**
**कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव॥ २॥**

१. **अहम्**=मैं **एतौ**=इन दोनों काम-क्रोधरूप शत्रुओं को **उदतिष्ठिपम्**=उत्थापित करता हूँ, बल से इनको बाहर निकालता हूँ, उसी प्रकार **इव**=जैसेकि **श्रान्तसदौ गावौ**=थकावट के कारण बैठे हुए दो बैलों को एक किसान दण्डपातादि द्वारा बलपूर्वक उठाता है। अथवा **कूजन्तौ कुर्कुरौ इव**=जैसे भौंकते हुए दो कुत्तों को पाषाण के प्रहारादि से अपसारित करते हैं, **उद् अवन्तौ वृकौ इव**=जैसे गोयूथ में से बछड़ों को उठाकर ले-जाते हुए भेड़ियों को ग्वाले दूर भगाते हैं।

**भावार्थ**—ये काम-क्रोध भौंकते हुए कुत्तों के समान हैं, बछड़ों को उठाकर ले-जानेवाले भेड़ियों के समान हैं। इन्हें दूर भगाना आवश्यक है। जैसे किसान जमकर बैठे हुए दो बैलों को दण्डप्रहार से उठाकर गोष्ठ से बाहर करता है, इसी प्रकार इन काम-क्रोध को हृदय से बाहर करना आवश्यक है।

ऋषिः—**कपिञ्जलः**॥ देवता—**गृध्रौ**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

## आतोदिनौ संतोदिनौ

**आतोदिनौ नितोदिनावथो सन्तोदिनावुत।**
**अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमाञ्जभार॥ ३॥**

१. ये काम-क्रोध **आतोदिनौ**=सर्वतः व्यथा प्राप्त करानेवाले हैं, **नितोदिनौ**=निश्चय से पीड़ित करनेवाले हैं **उत अथो**=और अब **संतोदिनौ**=मिलकर खूब ही कष्ट देनेवाले हैं। २. इन काम-क्रोध में **यः**=जो भी **इतः**=इधर हृदयदेश में **स्त्री पुमान् जभार**=(स्त्रियं पुमांसं वा) स्त्री या पुरुष को प्रहृत करता है (जहार प्रहृतवान्) तो मैं इस काम-क्रोध के **मेढ्रम्**=(मिह सेचने) सेचन को **अपि नह्यामि**=बद्ध करता हूँ। काम-क्रोध के सेचन को रोककर ही हम अपनी पीड़ाओं को दूर कर सकते हैं। नियमन किये गये काम-क्रोध पीड़ाकर नहीं होते।

**भावार्थ**—उच्छृङ्खल रूप में काम-क्रोध हमारे हृदय पर आघात करके निश्चय से खूब ही पीड़ा पहुँचाते हैं। इनके सेचन का नियमन आवश्यक है। वशीभूत काम-क्रोध ही ठीक हैं।

## ९६. [ षण्णवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**कपिञ्जलः**॥ देवता—**वयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## अपने स्थान पर

**असद्दन्गावः सदनेऽपप्तद्वसतिं वयः।**
**आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम्॥ १॥**

१. **गावः सदने असदन्**=गौएँ जैसे अपने स्थान पर बैठती हैं, **वयः**=पक्षी **वसतिं अपसत्**=अपने घोंसलों में पहुँचता है, **पर्वताः आस्थाने अस्थुः**=पर्वत अपने स्थान पर स्थित होते हैं, इसी प्रकार मैं **वृक्कौ**=(वृजी वर्जने) इन वर्जनीय काम-क्रोध को **स्थाम्नि प्रतिष्ठिपम्**=इनके स्थान में स्थापित करता हूँ। (स्थामन् Fixity, stability) इनकी चञ्चलता को रोकनेवाला होता हूँ।

**भावार्थ**—गौएँ गोष्ठ में स्थित ही ठीक लगती हैं (न कि बैठक में), पक्षी घोंसले में ही शोभित होते हैं (न कि घरों में घड़ों पर बैठे हुए), पर्वत अपने स्थान पर स्थित ही अच्छे हैं। इसी प्रकार काम-क्रोध अपने स्थान पर अचञ्चल स्थिति में ही शोभा देते हैं।

इसप्रकार काम-क्रोध की चञ्चलता को दूर करके स्थिर वृत्तिवाला 'अथर्वा' अगले तीन सूक्तों का ऋषि है।

## ९७. [ सप्तनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### सर्वप्रद, सर्वज्ञ प्रभु द्वारा जीवनयज्ञ की पूर्ति

**यद॒द्य त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञे अ॒स्मिन्होत॑श्चिकित्व॒न्नव्॑णीमही॒ह।**
**ध्रु॒वम॑यो ध्रु॒वमु॒ता शवि॑ष्ठ प्रवि॒द्वान्य॒ज्ञमुप॑ याहि॒ सोम॑म्॥ १॥**

१. **यत्**=जो **अद्य**=आज, हे **होतः**=सर्वप्रद, **चिकित्वन्**=ज्ञानिन्, सर्वज्ञ प्रभो! **अस्मिन् प्रयति यज्ञे**=इस प्रवर्त्तमान, विच्छेद के बिना क्रियमाण जीवनयज्ञ में **इह त्वा अवृणीमहि**=यहाँ आपका वरण करते हैं तो आप **ध्रुवम् अयः**=निश्चय से सर्वथा (आयाक्षीः) हमारे इस यज्ञ को पूरा करते हैं। हे **शविष्ठ**=सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न प्रभो! **उत**=और आप **ध्रुवम्**=निश्चय से **प्रविद्वान्**=हमारे 'मन, वचन, कर्म' सबको जानते हुए **सोमम् यज्ञं उपयाहि**=इस शान्तभाव से चलनेवाले जीवन-यज्ञ में प्राप्त होओ। आपको ही इस जीवन-यज्ञ की सम्यक् पूर्ति करनी है।

**भावार्थ**—हम जीवन को यज्ञ का रूप दें। इस यज्ञ की पूर्ति के लिए प्रभु को आमन्त्रित करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### मनसा गोभिः ( सं नेष )

**सम॒मिन्द्र नो॒ मन॑सा नेष॒ गोभि॒: सं सू॒रिभि॑र्हरिव॒न्त्सं स्व॒स्त्या।**
**सं ब्रह्म॑णा दे॒वहि॑तं॒ यदस्ति॒ सं दे॒वानां॑ सुम॒तौ य॒ज्ञिया॑नाम्॥ २॥**

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **मनसा सं नेष**=मन के साथ संयुक्त कीजिए, हमें मनस्वी बनाइए। **गोभिः**=ज्ञान-प्राप्ति की साधनभूत इन्द्रियों के साथ **सं ( नेष )**=संयुक्त कीजिए। हे **हरिवन्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **सूरिभिः स्वस्त्या सम् ( नेष )**=विद्वानों के साथ और उनके द्वारा कल्याण के साथ संयुक्त कीजिए। २. हे प्रभो! हमें उस **ब्रह्मणा**=ज्ञान के साथ **सं ( नेष )**=संयुक्त कीजिए, **यत्**=जोकि **देवहितं अस्ति**=विद्वानों के लिए हितकर है, अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में 'अग्नि,वायु, आदित्य व अंगिरा' आदि देवों के हृदय में स्थापित हुआ है। हमें आप **यज्ञियानाम्**=यज्ञशील **देवानाम्**=देवों की **सुमतौ**=सुमति में **सं ( नेष )**=प्राप्त कराइए।

**भावार्थ**—प्रभुकृपा से हम 'उत्तम मन, ज्ञानेन्द्रियों, विद्वानों, कल्याण, वेदज्ञान व देव-सुमति' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## अतिथियज्ञ

**यानावह उशतो देव देवांस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे।**
**जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि॥ ३॥**

१. हे **देव**=दिव्य गुणों से प्रकाशमय प्रभो! **यान्**=जिन **उशतः देवान् आवहः**=हमारे हित की कामनावाले देवों को आप हमारे समीप प्राप्त कराते हैं, हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तान्**=उन्हें **स्वे सधस्थे प्रेरय**=अपने सधस्थ में—मिलकर बैठने के स्थान में प्रेरित कीजिए। वे हमारे घर को अपना ही घर समझें। उन्हें यहाँ किसी प्रकार का परायापन अनुभव न हों। २. वे देव यहाँ **जक्षिवांसः**=हव्य (पवित्र) पदार्थों को खाते हुए तथा **मधूनि पपिवांसः**=मधुर रसवाले पेय पदार्थों को पीकर आनन्द से रहें। हे **वसवः**=उत्तम निवास प्राप्त करानेवाले देवो! **अस्मै**=आपका आतिथ्य करनेवाले इस यज्ञशील यजमान के लिए **वसूनि**=ज्ञान के द्वारा निवास के लिए आवश्यक धनों को **प्रधत्त**=प्राप्त कराइए।

**भावार्थ**—हे प्रभो! हमारे घरों में देववृत्ति के विद्वान् आएँ, वे इसे अपना ही घर समझें। उचित खान-पान को प्राप्त करके वे हमारे लिए वसुओं का धारण करें, ज्ञान देकर हमें वसु-प्राप्ति के योग्य बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## 'वसुं घर्मं दिवम्' अनु

**सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः।**
**वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु॥ ४॥**

१. हे **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषो! **वः**=आपके **सदनानि**=स्थानों को **सुगा अकर्म**=सुख से जाने योग्य करते हैं। उन आपके **ये**=जोकि **मा जुषाणाः**=मेरे प्रति प्रीतिवाले होते हुए **सवने आजग्म**=मेरे इस यज्ञ में आये हो। २. आप **स्वा वसूनि**=अपने ज्ञान-धनों को **वहमानाः**=हमें प्राप्त कराते हुए तथा **भरमाणाः**=हमारे लिए इन धनों का पोषण करते हुए **वसुं घर्मं दिवम् अनु आरोहत**=ऐश्वर्य, शक्ति व ज्ञान के अनुपात में उत्कृष्ट लोक में आरोहण करनेवाले बनो।

**भावार्थ**—हमारे घरों में देववृत्ति के पुरुष आएँ। समय-समय पर होनेवाले यज्ञों में वे हमारे प्रति प्रीतिवाले होते हुए उपस्थित हों। हम उनके लिए सुखद स्थान की व्यवस्था करें। वे हमारे लिए ज्ञान-धनों को प्राप्त कराते हुए अपने ज्ञान व शक्ति के अनुसार उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—५ **त्रिपदाऽऽर्षीभुरिग्गायत्रीः**, ६ **त्रिपदाप्राजापत्याबृहती**॥

## यज्ञ

**यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा॥ ५॥**
**एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्यः स्वाहा॥ ६॥**

१. हे **यज्ञ**=श्रेष्ठतम कर्म! (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म) तू **यज्ञं गच्छ**=उपास्य परमात्मा को प्राप्त हो। हम यज्ञ करें और इन यज्ञों को प्रभु के प्रति अर्पित करनेवाले हों। हे यज्ञ! **यज्ञपतिं गच्छ**=तू यज्ञपति को प्राप्त हो, अर्थात् फल-प्रदान के द्वारा यजमान को प्राप्त होनेवाला हो। **स्वां योनिं गच्छ**=अपनी कारणभूत पारमेश्वरी शक्ति को प्राप्त हो, अर्थात् तुझे ये यजमान प्रभुशक्ति से होता

हुआ जानें। **स्वाहा**=(सु आह) यह वाणी कितनी सुन्दर है, वेद का यह कथन वस्तुतः श्रेयस्कर है। २. हे **यज्ञपते**=यजमान! **एषः**=यह **ते यज्ञः**=तुझसे किया जा रहा यज्ञ **सहसूक्तवाकः**=सूक्तवचनों के साथ हुआ है, विविध स्तोत्रों का इसमें उच्चारण हुआ है। **सुवीर्यः**=यह यज्ञ तुझे उत्तम वीर्यवाला बनाता है। **स्वाहा**=यह कथन कितना ही सुन्दर है। इसके सौन्दर्य को समझता हुआ तू यज्ञ करनेवाला बन।

**भावार्थ**—यज्ञ द्वारा प्रभुपूजन होता है। यह यज्ञ यजमान को उत्तम फल प्राप्त कराता है। यजमान इसे प्रभुशक्ति से होता हुआ समझे। इन यज्ञों को सूक्तवचनों के साथ करता हुआ वह उत्तम वीर्यवाला हो। यज्ञों के इन लाभों को समझता हुआ यजमान यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः—**७ त्रिपदासाम्नीभुरिग्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती**॥

## देवाः=गातुविदः

**वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित॥ ७॥**
**मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम्।**
**स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहाऽन्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा॥ ८॥**

१. मनुष्य को कुछ धन माता-पिता से या अन्य किन्हीं बन्धुओं से प्राप्त हो जाता है, यह धन 'हुत' (दत्त) है। कुछ धन वह स्वयं अर्जित करता है, यह धन 'अहुत' (किसी और से न दिया गया) है। हम **हुतेभ्यः**=दत्त धनों से **वषट्**=स्वाहा—यज्ञ—करें तथा **अहुतेभ्यः**=स्वयं अर्जित धनों से भी **वषट्**=स्वाहा व यज्ञ करें। **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **गातुविदः**=मार्ग को जाननेवाले हैं। प्रभु कहते हैं कि हे **देवा**=देवो! **गातुं वित्त्वा**=मार्ग को जानकर **गातुम् इत**=उस मार्ग पर ही चलो। मनुष्य अपने कर्त्तव्य को समझे और उसका आचरण करे। यज्ञशीलता ही हमें देव बनाती है। २. हे **मनसस्पते**=अपने मन को वश में करनेवाले जीव! **इमं नः यज्ञम्**=हमसे उपदिष्ट (प्रभूपदिष्ट) इस यज्ञ को **दिवि**=आकाश में **देवेषु**=वायु आदि देवों में **धाम् (धाः)**=धारण कर। **स्वाहा**=यह कितनी सुन्दर वाणी कही गई है। इस यज्ञ को तू **दिवि**=सारे आकाश की पवित्रता के निमित्त धारण कर। यह कथन सुन्दरतम है। इसी प्रकार इसे **तू पृथिव्याम्**=पृथिवी में अन्नादि की उत्पत्ति के निमित्त धारण कर। **स्वाहा**=यह कथन भी कितना सुन्दर है। इसे **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष के निमित्त—अन्तरिक्ष से होनेवाली वृष्टि के निमित्त धारण कर। **स्वाहा**=यह कथन सुन्दर है! **वाते**=वायु की पवित्रता के निमित्त **स्वाहा**=तू यज्ञ कर, उत्तम हव्य पदार्थों को **(धाः)** धारण कर।

**भावार्थ**—पिता आदि से प्राप्त तथा अपने पुरुषार्थ आदि से प्राप्त सभी धनों से हमें यज्ञ करना है। इसप्रकार यज्ञ के द्वारा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक व वायु सब उत्तम होंगे।

# ९८. [ अष्टनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥

## 'हविषा घृतेन', 'इन्द्रेण वसुना मरुद्भिः'

**सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः।**
**सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा॥ १॥**

१. **बर्हिः**=हृदयान्तरिक्ष **हविषा घृतेन**=दानपूर्वक अदन की वृत्ति से (हु दानादनयोः, घृ क्षरणदीप्त्योः) तथा ज्ञानदीप्ति से **समक्तम्**=सम्यक् अलंकृत हो। जिस हृदय में से वासनाओं को उखाड़ दिया गया है, वह बर्हि है। इस हृदय में यज्ञशेष के सेवन की वृत्ति हो तथा यह ज्ञान

के प्रकाशवाला बने। यह हृदयान्तरिक्ष **इन्द्रेण सं ( अक्तम् )**=जितेन्द्रियता की भावना से समक्त हो। **वसुना मरुद्भिः सम्**=निवास को उत्तम बनाने की भावना तथा प्राणों से समक्त हो। २. यह हृदय **देवैः**=देवपुरुषों द्वारा **विश्वदेवेभिः**=सब दिव्य गुणों से **समक्तम्**=सम्यक् अलकृंत किया जाकर **इन्द्रं गच्छतु**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को प्राप्त हो, **हविः ( गच्छतु )**=दानपूर्वक अदन की वृत्ति को प्राप्त हो। **स्वाहा**=यह उत्तम वेदवाणी है। यहाँ हवि से प्रारम्भ करके हवि पर ही समाप्ति है। वस्तुतः सर्वमुख्य बात तो हवि ही है। दानपूर्वक अदन से ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

**भावार्थ**—प्रभु-प्राप्ति के लिए हृदय को 'त्यागपूर्वक अदन की भावना, ज्ञानदीप्ति, जितेन्द्रियता, शरीर में निवास को उत्तम बनाने की भावना तथा प्राण-साधना' से युक्त करना आवश्यक है। देवलोग हृदय को दिव्य गुणों से युक्त करते हुए तथा त्यागपूवर्क अदन की वृत्तिवाले बनते हुए प्रभु को प्राप्त होते है।

## ९९. [ नवनवतितमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वेदिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

### अलंकृत यज्ञवेदि

**परि॑ स्तृणीहि॒ परि॑ धेहि॒ वेदिं॒ मा जा॒मिं मो॑षीरमु॒या शया॑नाम्।**
**होतृ॒षद॑नं॒ हरि॑तं हिर॒ण्ययं॑ नि॒ष्का ए॒ते यज॑मानस्य लो॒के॥ १॥**

१. हे दर्भ! **परिस्तृणीहि**=तू वेदि के चारों ओर आस्तीर्ण हो, **वेदिं परिधेहि**=वेदि को समन्तात् धारण करनेवाला बन। यज्ञवेदि के चारों ओर शाद्वल प्रदेश हो। **अमुया शयानाम्**=इस वेदि के साथ निवास करनेवाली **जामिम्**=(जायते अस्यां प्रजा इति) यजमान पत्नी को **मा मोषी**=मत हिंसित कर। यज्ञशील पत्नी का घर रोग आदि से आक्रान्त न हो। २. **होतृषदनम्**=होता का घर, यज्ञशील पुरुष का घर **हरितम्**=(हरिद्वर्णं) हराभरा अथवा दुःखों का हरण करनेवाला तथा **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय होता है। वस्तुतः **एते**=ये यज्ञवेदि के चारों ओर आस्तीर्यमाण दर्भ **यजमानस्य लोके**=इस यज्ञशील पुरुष के घर में **निष्काः**=स्वर्णमय अलंकार होते हैं, अर्थात् यजमान का घर धन-धान्य से पूर्ण होता है।

**भावार्थ**—शाद्वल प्रदेश से आवृत यज्ञवेदि घर की शोभा हैं। यज्ञशीला गृहपत्नी घर को कभी रोगादि से हिंसित होता हुआ नहीं पाती। यज्ञमय गृह 'दुःखरहित, प्रकाशमय व धन-धान्य से पूर्ण' बनता है।

यज्ञों में व्याप्त जीवनवाला यह व्यक्ति 'यम'=संयत जीवनवाला बनता है। इसे कभी अशुभ स्वप्न नहीं आते। यह यम अगले दोनों सूक्तों का ऋषि है।

## १००. [ शततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### दुःष्वप्न्य पाप से दूर

**प॒र्यावर्ते दुःष्वप्न्या॑त् पा॒पात् स्वप्न्या॒दभू॑त्याः।**
**ब्रह्मा॒हमन्त॑रं कृण्वे॒ परा॒ स्वप्नं॒मुखा॒ः शुचः॥ १॥**

१. **दुःष्वप्न्यात् पापात्**=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत पाप से मैं **पर्यावर्ते**=प्रतिनिवृत्त होता हूँ। उस **अभूत्याः**=अनैश्वर्य, दरिद्रता से भी दूर होता हूँ जोकि **स्वप्न्यात्**=इसप्रकार के स्वप्नों का कारण बनती हुई निद्रासुख को विहत करती है। २. **अहम्**=मैं **ब्रह्म**=ज्ञान को **अन्तरम्**=व्यवधायक

दुःस्वप्न-निवारक **कृण्वे**=करता हूँ। यह ब्रह्म मेरा कवच बनता है और मैं दुःष्वप्न्य पापों से आक्रान्त नहीं होता। इस ब्रह्मरूप व्यवधायक से **स्वप्नमुखाः शुचः**=दुःस्वप्ननिबन्धन शोक **परा (भवन्तु)**=मुझसे दूर हों। मैं ज्ञान से सुरक्षित हुआ इन शोकों से आक्रान्त न होऊँ।

**भावार्थ**—हम ज्ञान को अपना कवच बनाकर, पापों व दरिद्रता से दूर होकर, अशुभ स्वप्न-जनित शोकों को अपने से दूर रक्खें।

## १०१. [ एकोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### स्वप्न की बात पर विश्वास न करना

**यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते।**
**सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा॥ १॥**

१. **यत्**=जो **स्वप्ने**=स्वप्न में **अन्नम् अश्नामि**=अन्न खाता हूँ, **प्रातः न अधिगम्यते**=वह प्रातः जागने पर उपलब्ध नहीं होता। **सर्वं तत्**=वह सब स्वप्नभुक्त अन्न **मे**=मेरे लिए **शिवं अस्तु**=कल्याणकर हो, **तद् दिवा नहि दृश्यते**=वह दिन में नहीं दीखता है, अर्थात् 'स्वप्न की बातें सत्य होती हों', ऐसा नहीं है, इससे स्वप्न के कारण घबराना नहीं चाहिए।

**भावार्थ**—स्वप्न देखने पर हम शोक न करें। प्रत्युत अपने चित्त को दृढ़ करके स्वप्न की बात को 'असत्' समझें।

स्वप्न आदि की बातों से इतना प्रभावित न होनेवाला यह अपने को हिंसित होने से बचाता हुआ 'प्रजापति' बनता हैं। अगले सूक्त का यही ऋषि है—

## १०२. [ द्व्युत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**प्रजापतिः**॥ देवता—**द्यावापृथिव्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती**॥

### 'अग्नि, वायु, आदित्य व यम' को नमस्कार

**नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे।**
**मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः॥ १॥**

१. **द्यावापृथिवीभ्याम् नमस्कृत्य**=द्यावापृथिवी के लिए नमस्कार करके **अन्तरिक्षाय मृत्यवे**= अन्तरिक्ष व मृत्यु के लिए नमस्कार करके **ऊर्ध्वः तिष्ठन्**=ऊपर स्थित होता हुआ, अर्थात् विषय-वासनाओं में न फँसता हुआ **मेक्षामि**=गति करता हूँ (मियक्षतिर्गतिकर्मा—नि० २। २४)। 'द्यावा' मस्तिष्क है, 'पृथिवी' शरीर है। इन्हें दीप्त व दृढ़ बनाने के लिए मैं प्रभु के प्रति नमस्कारवाला होता हूँ। 'अन्तरिक्ष' हृदय है। इसे पवित्र बनाने के लिए भी मैं प्रभु के प्रति नतमस्तक होता हूँ, साथ ही मृत्यु का स्मरण भी करता हूँ। मृत्यु का स्मरण मुझे वासनाओं में फँसने से बचाता है। मैं इन वासनाओं से ऊपर उठ जाता हूँ। २. मेरी तो यही प्रार्थना है कि **मा**=मुझे **ईश्वराः मा हिंसिषुः**=आदित्य, अग्नि, वायु व यम (मृत्युदेव) हिंसित न करें। मैं अहिंसित होता हुआ चिरकाल तक इस लोक में अवस्थित रहूँ। ये देव मुझे दीर्घायुष्य प्राप्त कराएँ।

**भावार्थ**—हम मस्तिष्क, शरीर व हृदय को दीप्त, दृढ़ व पवित्र बनाने के लिए मृत्युरूप भगवान् का स्मरण करें। यह स्मरण हमें वासनाओं से ऊपर स्थित करे। हम वासनाओं में न फँसते हुए 'अग्नि, वायु, आदित्य' देवों की अनुकूलता से दीर्घजीवी हों।

वासनाओं से ऊपर उठकर यह व्यक्ति उन्नति-पथ पर बढ़ता है। उन्नत होता हुआ 'ब्रह्मा' बनता हैं। यह 'ब्रह्मा' अगले दो सूक्तों का ऋषि हैं—

## १०३. [ त्र्युत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### यज्ञकामः पूर्तिकामः

**को अस्या नो द्रुहो ऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन्।**
**को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥ १ ॥**

१. **कः**=(को ह वै नाम प्रजापतिः—तै० २.२.१०.२) वह अनिरुक्त प्रजापति **क्षत्रियः**=क्षतों से हमारा त्राण करनेवाला है। **वस्यः इच्छन्**=प्रशस्त फल को हमारे लिए देने की इच्छा करता हुआ **नः**=हमें **अस्याः**=इस **अवद्यवत्या**=गर्ह्य कर्मोंवाली **द्रुहः**=जिघांसा से **उन्नेष्यति**=अवश्य ऊपर उठाएगा। २. **कः**=वह प्रजापति **यज्ञकामः**=हमसे अनुष्ठीयमान यज्ञों को चाहता है। **कः उ**=वह प्रजापति ही **पूर्तिकामः**=हमारी धनादि की पूर्ति को चाहता है। **कः**=वह प्रजापति ही **देवेषु**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **दीर्घं आयुः**=दीर्घ जीवन को **वनुते**=देते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु हमें हिंसावृत्ति से दूर करके यज्ञों द्वारा समृद्ध करते हैं और हमें दीर्घ जीवन प्राप्त कराते हैं।

## १०४. [ चतुरुत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### 'सुदुघा नित्यवत्सा' धेनु

**कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम्।**
**बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ १ ॥**

१. 'पृश्नि' का अर्थ निरुक्त में 'संस्प्रष्टो भासा २.१४' इसप्रकार दिया है। ज्ञानदीप्ति से युक्त यह वेद यहाँ 'धेनु' के रूप में कहा गया है। यह धेनु ज्ञानदुग्ध देनेवाली है। सुखसंदोह्य होने से 'सुदुघा' है तथा सदा ही ज्ञानदुग्ध देनेवाली होने से 'नित्यवत्सा' कही गई है। **कः**=वे अनिरुक्त प्रजापति इस **सुदुघाम्**=सुख-संदोह्य, **नित्यवत्साम्**=सदा वत्सवाली (सर्वदा नवप्रसूता), अर्थात् सदा ही ज्ञानदुग्ध देनेवाली **पृश्निम्**=ज्ञानदीप्तियों के स्पर्शवाली **धेनुम्**=वेदधेनु को **वरुणेन**=पापनिवारण के हेतु से **अथर्वणे**=(अ थर्व) स्थिरवृत्तिवाले पुरुष के लिए **दत्ताम्**=दे। २. यह वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाला अथर्वा भी **बृहस्पतिना सख्यं जुषाणः**=उस ब्रह्मणस्पति=ज्ञान के स्वामी प्रभु से मित्रता का प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **यथावशम्**=इन्द्रियों को वश में करने के अनुपात में **तन्वः कल्पयाति**=शरीरों को सामर्थ्ययुक्त करता है, अर्थात् जितना-जितना जितेन्द्रिय बनता है, उतना-उतना अपने को शक्तिशाली बना पाता है।

**भावार्थ**—प्रभु स्थिरवृत्तिवाले पुरुष के लिए पापनिवृत्ति के हेतु से इस वेदधेनु को प्राप्त कराते हैं, जोकि सुदुघा है और सदा ही ज्ञानदुग्ध देनेवाली है। प्रभु से प्रीतिपूर्वक मित्रता का स्थापन करते हुए हम जितेन्द्रिय बनकर अपने शरीरों को शक्तिशाली बनाएँ।

जिस स्थिरवृत्तिवाले पुरुष के लिए प्रभु वेदज्ञान देते हैं, वह 'अथर्वा' ही अगले दोनों सूक्तों का ऋषि है।

## १०५. [ पञ्चोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### दैव्य, न कि पौरुषेय

**अपक्रामन्पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।**
**प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह॥ १॥**

१. **पौरुषेयात्**=(पुरुषकृतात्) सामान्य पुरुषों से बनाये गये वचनों (ग्रन्थों) से **अपक्रामन्**=दूर हटता हुआ, **दैव्यं वचः वृणानः**=उस देव-सम्बन्धी इस वेदवचन का वरण करता हुआ, मनुष्यकृत ग्रन्थों के स्थान में देवकृत वाणियों को अपनाता हुआ, **विश्वेभिः सखिभिः सह**=सब समान ख्यानवाले, मिलकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले, साथियों के साथ **प्रणीतीः**=प्रकृष्ट नीति-मार्गों का—वेदोपदिष्ट न्याय्य मार्गों का **अभ्यावर्तस्व**=आभिमुख्येन अनुसरण कर।

**भावार्थ**—पुरुषकृत ग्रन्थों के स्थान पर देवकृत वाणियों का हम अध्ययन करें। अपने सब साथियों के साथ न्याय्य मार्गों का ही अनुसरण करें।

## १०६. [ षडुत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**जातवेदाः, वरुणश्च** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

### दोषनिराकरण व अमृतत्व प्राप्ति

**यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।**
**ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः॥ १॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यत् किञ्चित्**=जो कुछ **अस्मृति**=कर्त्तव्य के स्मरण न होने के कारण **चकृम**=हम ग़लती कर बैठते हैं, अथवा हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! जो कुछ **चरणे उपारिम**=आचरण में दोष कर बैठते हैं, **ततः**=उस ग़लती से हे **प्रचेतः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले प्रभो! **त्वं नः पाहि**=आप हमें बचाइए। २. इसप्रकार दोषों के दूर होने पर **शुभे**=शुभ कार्यों के होने पर **नः**=हम **सखिभ्यः**=सखाओं के लिए—परस्पर मित्रभाव को प्राप्त हम लोगों के लिए **अमृतत्वम् अस्तु**=अमृतत्व प्राप्त हो, नीरोगता प्राप्त हो।

**भावार्थ**—हम अस्मरण के कारण यदि कुछ ग़लती कर जाएँ अथवा आचरण में दोषवाले हो जाएँ तो वे सर्वज्ञ प्रकाशमय प्रभु हमें उस ग़लती से बचाएँ। शुभ मार्ग पर चलते हुए हम अमृतत्व को प्राप्त करें।

ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करके निष्पाप जीवनवाला 'भृगु' (भ्रस्ज पाके) अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## १०७. [ सप्तोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**सूर्य आपश्च** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### सूर्यस्य सप्त रश्मयः

**अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः।**
**आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन्॥ १॥**

१. एक ही सूर्य ('कश्यप'=पश्यक=सदा सबको देखनेवाला—प्रकाशित करनेवाला) है, वह 'कश्यप' है। उसके अंशभूत सात सूर्य उसकी सात प्रकार की किरणें ही हैं (आरोगः, भ्राजः, पटरः, पतङ्गः, स्वर्णरः, ज्योतिषीमान्, विभासः)। ये **सूर्यस्य सप्त रश्मयः**=सूर्य की सात किरणें—

परस्पर समेवत (मिली हुई) किरणें, **समुद्रियाः**=समुद्र से वाष्पीभूत होकर ऊपर उठे हुए तथा मेघरूप में परिणत हुए-हुए, **आपः**=जलों को **दिवः अवतारयन्ति**=द्युलोक से नीचे उतारती हैं, अर्थात् उन जलों का ये किरणें प्रवर्षण करनेवाली होती हैं। २. **ताः**=ये **धाराः**=धारारूप से गिरने-वाले जल अथवा धारण करनेवाले जल **ते शल्यम्**=तेरे पीड़ाकारी कासश्लेष्मादि रोग को **असि-स्रसन्**=(स्रंसयन्तु विनाशयन्तु) विनष्ट करें अथवा अन्नोत्पादन द्वारा दुर्भिक्ष के कष्ट को दूर करें।

**भावार्थ**—सूर्य-किरणें समुद्र-जलों को वाष्पीभूत करके ऊपर ले-जाती हैं। वहाँ से वे उन्हें इस पृथिवी पर बरसाती हुई हमारे रोगों व दुर्भिक्षजनित कष्टों को दूर करती है।

## १०८. [ अष्टोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्**॥

### हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलु

**यो नं स्तायद्दिप्सति यो नं आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने।**
**प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान्मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम्॥ १॥**

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यः**=जो शत्रु **नः**=हमें **तायत्**=(अन्तर्हित नामैतत्) अन्तर्हित रूप से (छिपे-छिपे) **दिप्सति**=हिंसित करना चाहता है और **यः**=जो शत्रु **नः**=हमें **आविः**=प्रकटरूप से हिंसित करना चाहता है और यदि कोई **विद्वान्**=पर-बाधन के उपायों को जाननेवाला **स्वः**=अपना बन्धु, **अरणः वा**=या कोई शत्रु हमें हिंसित करना चाहता है, **तान्**=प्रकट-अप्रकट-रूप से जिघांसा आदि करनेवाले उन शत्रुओं को **दत्वती**=दाँतोंवाली **अरणी**=आर्तिकारिणी पीड़ा **प्रतीची एतु**=उसकी ओर ही गतिवाली होकर प्राप्त हो। यह पीड़ारूप राक्षसी दाँतोंवाली होकर उनको ही खा जाने के लिए प्राप्त हो। २. हे **अग्ने**=प्रभो! **एषां वास्तु मा भूत्**=इनका घर न हो। इनका निवास घरों में न होकर कारागारों में हो। **उ**=और **अपत्यं मा**=इनके सन्तान भी न हो। इनके सन्तान इनके धनों के उत्तराधिकारी न समझे जाएँ। अथवा इनके सन्तान हों ही नहीं, क्योंकि सन्तानों में पिता के गुण ही आते हैं और इसप्रकार अवाञ्छनीय तत्त्वों का वर्धन होता है।

**भावार्थ**—जो बन्धु व शत्रु छिपकर या प्रकटरूप से हमें हिंसित करना चाहते हैं, यह हिंसा उन्हें ही प्राप्त हो (हिंस्रः स्वपापेन विहिंसतः खलु)। इनका स्थान कारागार में हो, इनके सन्तान इनके धन के उत्तराधिकारी न हों।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

### वैश्वानरेण सयुजा

**यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात्तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः।**
**वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान्प्रतीचो निर्दह जातवेदः॥ २॥**

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **यः**=जो **नः**=हम **सुप्तान्**=सोते हुओं को, **जाग्रतः**=जागते हुओं को, **तिष्ठतः चरतः वा**=खड़े हुओं को या चलते हुओं को **अभिदासात्**=उपक्षित (विनष्ट) करे, हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **वैश्वानरेण सयुजा**=जाठराग्निरूप सहाय से (साथी से) मिलकर **सजोषाः**=समानरूप से दुष्टदमनरूप कार्य का (जुष् सेवने) सेवन करनेवाले आप **प्रतीचः**=हमारे विनाश के लिए हमारी ओर आते हुए **तान्**=उन शत्रुओं को **निर्दह**=नितरां दग्ध कर दीजिए। २. इन औरों का उपक्षय करनेवालों की जाठराग्नि ठीक न रहे और इसप्रकार रोगाक्रान्त होकर वे स्वयं ही विनष्ट हो जाएँ।

**भावार्थ**—औरों का उपक्षय करनेवाले लोग प्रभु से इसप्रकार दण्डित होते हैं कि इनकी

जाठराग्नि विकृत होकर इन्हें रोगी बनाकर विनष्ट कर देती है।

पापवृत्ति से दूर होकर, धर्म में स्थिरवृत्तिवाला (बद स्थैर्य) 'बादरायणि' अगले सूक्त का ऋषि है—

## १०९. [ नवोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती** ॥

### 'उग्र बभ्रु' प्रभु

**इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी। घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे॥ १॥**

१. **उग्राय**=तेजस्वी—शत्रुओं के लिए भंयकर **बभ्रवे**=धारण करनेवाले प्रभु के लिए **इदं नमः**=यह नमस्कार है, हम 'उग्र बभ्रु' प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हैं। **यः**=जो प्रभु **अक्षेषु**=(Sacred knowledge) पवित्र ज्ञान होने पर **तनूवशी**=हमें शरीरों को वश में करनेवाला बनाता है। पवित्र ज्ञान देकर प्रभु हमें शरीर को वशीभूत करनें में समर्थ करते हैं। २. **घृतेन**=इस ज्ञानदीप्ति के द्वारा **कलिम्**=(Strife. dissension; war, battle) झगडों व युद्धों को **शिक्षामि**=अपने से दूर करता हूँ (ताडयामि, हन्मि)। **ईदृशे**=ऐसा होने पर—परस्पर प्रेम होने पर **सः**=वे प्रभु **नः मृडाति**=हमें सुखी करते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु 'उग्र' हैं 'बभ्रु' हैं। पवित्र ज्ञान देकर हमें शरीर को वश में करने की योग्यता प्रदान करते हैं। हम ज्ञान के द्वारा झगड़ों को दूर करके प्रभु के अनुग्रह के पात्र बनते हैं।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### यज्ञ व हव्य-सेवन

**घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च।**
**यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या॥ २॥**

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **अप्सराभ्यः**=(अप=कर्म) यज्ञादि उत्तम कर्मों में विचरनेवाली प्रजाओं के लिए **घृतम् वह**=ज्ञानदीप्ति व मल-क्षरण को प्राप्त कराइए, **च**=और **अक्षेभ्यः**=पवित्र ज्ञानों की प्राप्ति के लिए **पांसून्**=(पशि नाशने) वासना-विनाशों को तथा **सिकताः अपः** (षिच् क्षरणे)=शरीर में सिक्त किये जानेवाले रेतःकणरूप जलों को प्राप्त कराइए। प्रभु कर्मशील प्रजाओं को ज्ञान प्राप्त कराते हैं। ज्ञान के लिए वे वासना-विनाश द्वारा शरीर में ही शक्तिकणों के सेवन का सामर्थ्य प्राप्त कराते हैं। शरीर में सिक्त रेतःकण ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। २. इसप्रकार ज्ञानदीप्तिवाले **देवाः**=ये देववृत्ति के पुरुष **यथाभागम्**=भाग के अनुसार **हव्यदातिं जुषाणाः**=हव्य(पवित्र) पदार्थों के दान का सेवन करते हुए—यज्ञों में अग्नि के अन्दर हव्य पदार्थों को डालते हुए, **उभयानि हव्या**=(पयः पशूनां रसमोषधीनाम्) पशुओं के दूध व ओषधियों के रसरूप दोनों हव्य पदार्थों के आनन्द का **मदन्ति**=अनुभव करते हैं।

**भावार्थ**—प्रभु कर्मशील प्रजाओं को ज्ञान प्राप्त कराते हैं। ज्ञान प्राप्त कराने के लिए ही वासना-विनाश व शरीर में शक्ति के सेचन का सामर्थ्य देते हैं। ये देव अपने भाग के अनुसार यज्ञों को करते हुए पशुओं के दूध व ओषधियों के रस का आनन्द लेते हैं।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### हविर्धानमन्तरा सूर्यं च

**अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च।**
**ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु॥ ३॥**

१. **अप्सरसः**=यज्ञादि कर्मों में विचरनेवाले लोग (अप् सर) **हविर्धानम्**=(हविर्धीयते अत्र) जिसमें हव्य पदार्थों का ही भोजन के रूप में आधान होता है, उस शरीर (भूलोक) **च**=तथा **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य से अधिष्ठित मस्तिष्करूप द्युलोक के **अन्तरा**=बीच में—हृदयान्तरिक्ष में **सधमादं मदन्ति**=उस प्रभु के साथ स्थिति के आनन्द का अनुभव करते हैं। (सहमदनं यथा भवति तथा मदन्ति)। २. **ताः**=वे यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्तियाँ **मे हस्तौ**=मेरे हाथों को **घृतेन संसृजन्तु**=मलक्षरण से, निर्मलता से संसृष्ट करें। 'कर्मों में लगे रहना' मेरे जीवन को पवित्र बनाये। ये क्रियाशीलता की वृत्तियाँ ही **मे सपत्नम्**=मेरे शत्रुभूत **कितवम्**=(A mad person) पागलपन को **रन्धयन्तु**=विनष्ट करें। ('कितवं' शब्द यहाँ पागलपन का प्रतीक है)।

**भावार्थ**—क्रियाशील पुरुष पवित्र भोजन करते हुए तथा मस्तिष्क को ज्ञानसूर्य से दीप्त करते हुए हृदय में प्रभुसान्निध्य के आनन्द का अनुभव करते हैं। ये क्रियाशीलता की वृत्तियाँ हमारे हाथों को पवित्रता से संसृष्ट करती हैं तथा पागलपन को विनष्ट करती हैं।

ऋषिः—**बादरायणिः**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## ज्ञान व प्रभु-स्तवन द्वारा विरोधी की पराजय

**आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर।**
**वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान्प्रतिदीव्यति॥ ४॥**

१. **प्रतिदीव्ने**=प्रतिकूल व्यवहार करनेवाले के लिए **अस्मान्**=हमें **घृतेन**=मलक्षरण व ज्ञानदीप्ति के साथ **आदिनवं अभिक्षर**=(आदौ नवम्=स्तुतिम्, नु स्तुतौ) दिन के प्रारम्भ में स्तुति को प्राप्त करा। हम स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हुए तथा प्रतिदिन प्रातः प्रभु-स्तवन करते हुए विरुद्ध व्यवहार करनेवालों को पराजित करें। २. हे प्रभो! **यः अस्मान् प्रतिदीव्यति**=जो हमारे साथ प्रतिकूल व्यवहार करता है, उसे इसप्रकार **जहि**=विनष्ट कीजिए, **इव**=जिस प्रकार **वृक्षम्**=वृक्ष को **अशन्या**=विद्युत् से नष्ट करते हैं।

**भावार्थ**—ज्ञानदीप्ति तथा प्रभु-स्तवन द्वारा हम विरोधी को पराजित करें। हे प्रभो! आप हमारे विरोधी को इसप्रकार विनष्ट कीजिए जैसेकि वृक्ष को विद्युत् नष्ट करती हैं।

ऋषिः—**बादरायणिः**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## कार्यसाधक धन तथा विशिष्ट ज्ञान

**यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च।**
**स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम॥ ५॥**

१. **यः**=जो प्रभु **नः द्युवे**=हमारे व्यवहार की सिद्धि के लिए **इदं धनं चकार**=इस धन को करते हैं, अर्थात् कार्यसिद्धि के लिए आवश्यक धन प्राप्त कराते हैं। **यः**=जो प्रभु **अक्षाणाम्**=पवित्र ज्ञानों के **ग्लहनम्**=ग्रहण को **शेषणं च**=तथा विशिष्टता को करते हैं, अर्थात् हमारे लिए पवित्र ज्ञानों को विशेषरूप से प्राप्त कराते हैं, **सः देवः**=वे प्रकाशमय प्रभु **नः**=हमारी **इदं हविः**=इस हवि को—दानपूर्वक अदन को, यज्ञशेष के सेवन की वृत्ति को **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले हों। यह हवि हमें प्रभु का प्रिय बनाये। २. हम अपने इस जीवन में **गन्धर्वेभिः**=ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवालों के साथ **सधमादं मदेम**=मिलकर एक स्थान में स्थित होते हुए आनन्द का अनुभव करें।

**भावार्थ**—प्रभु हमें कार्यसाधक धन प्राप्त कराते हैं, विशिष्ट पवित्र ज्ञान का ग्रहण कराते हैं। हम हवि द्वारा, त्यागपूर्वक अदन के द्वारा प्रभु का पूजन करें और ज्ञानियों के साथ मिल-बैठते हुए आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## गन्धर्वों का लक्षण

**संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः।**
**तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६॥**

१. गतमन्त्र के गन्धर्वों को सम्बोधित करते हुए कहते है कि **'संवसवः' इति वः नामधेयम्**='संवसवः' यह आपका नाम है, आप उत्तमरूप से मिलकर रहनेवाले या राष्ट्र में प्रजा को बसानेवाले, **उग्रंपश्याः**=तेजस्वी दिखनेवाले, **राष्ट्रभृतः**=राष्ट्र का धारण करनेवाले तथा **हि**=निश्चय से **अक्षाः**=(अक्ष पचाद्यच्) व्यवहारकुशल हो। २. हे **इन्दवः**=शक्तिशाली गन्धर्वो! **तेभ्यः वः**=उन आपके लिए हम **हविषा विधेम**=हवि के द्वारा—उचित कर-प्रदान द्वारा आदर प्रकट करें और **वयम्**=हम **रयीणां पतयः स्याम्**=धनों के स्वामी हों। इन गन्धर्वों से रक्षित हुए-हुए हम धनस्वामी बन पाएँ। (गां भूमिं धारयन्ति) ये गन्धर्व राष्ट्रभूमि का रक्षण करते हैं। रक्षित राष्ट्र में प्रजाएँ उत्तमता से धनार्जन कर पाती हैं।

**भावार्थ**—राष्ट्र का धारण करनेवाले गन्धर्व प्रजा को उत्तम निवास प्राप्त कराते हैं, तेजस्वी होते हैं, व्यवहार-कुशल होते हैं। ये प्रजाओं से उचित कर प्राप्त करते हुए राष्ट्र की ऐसी उत्तम व्यवस्था करते हैं कि राष्ट्र में सभी धन-स्वामी बनते हैं।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## कल्याण का मार्ग

**देवान्यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम। अक्षान्यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे॥ ७॥**

१. **यत्**=क्योंकि **नाथितः**=याचना-(प्रार्थना)-वाला होता हुआ मैं **देवान् हुवे**=ज्ञानियों को पुकारता हूँ, **यत्**=क्योंकि हम **ब्रह्मचर्यं ऊषिम**=ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करते हैं, **यत्**=क्योंकि **बभ्रून्**=धारणात्मक **अक्षान्**=व्यवहारों को व ज्ञानों को **आलभे**=प्राप्त करता हूँ, तो **ते**=वे गतमन्त्र के गन्धर्व **ईदृशे**=ऐसी स्थिति होने पर **नः**=हमें **मृडन्तु**=सुखी करें।

**भावार्थ**—हम 'ज्ञान देनेवाले विद्वानों को ही पुकारें, ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करें, धारणात्मक व्यवहारों को ही अपनाएँ' यही कल्याण का मार्ग है।

अगले सूक्त का ऋषि, 'इन्द्राग्नी' शक्ति व प्रकाश की आराधना करता हुआ, 'भृगु' (तपस्वी) है—

# ११०. [ दशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

## वृत्रहन्तमा

**अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति। उभा हि वृत्रहन्तमा॥ १॥**

१. हे **अग्ने**=प्रकाशस्वरूप **च**=और **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभो! आप दोनों रूप से **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले व्यक्ति के लिए **वृत्राणि**=ज्ञान पर पर्दे के रूप में आ जानेवाली वासनाओं को **अप्रति**=(अप्रतिपक्षम्=निःशेषम्) पूर्णतया **हतः**=विनष्ट करते हो। शक्तिशाली व प्रकाशस्वरूप प्रभु का उपासन वासनाओं को विनष्ट करता है। २. **उभा**=ये प्रकाश और शक्ति दोनों मिलकर **हि**=निश्चय से **वृत्रहन्तमा**=अधिक-से-अधिक वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं।

**भावार्थ**—हम अपने जीवनों में प्रकाश व शक्ति का समन्वय करते हुए वासनाओं को जीतनेवाले बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

## स्वर्ग के प्रापक 'अग्नि और इन्द्र'

**याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा।**
**प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम्॥ २॥**

१. **याभ्याम् एव**=जिन अग्नि व इन्द्र के द्वारा ही, प्रकाश व बल के द्वारा ही **स्वः**=स्वर्ग को **अग्रे**=सर्वप्रथम **अजयन्**=जीतते हैं, **यौ**=जो अग्नि और इन्द्र **विश्वा भुवनानि आतस्थतुः**=सब प्राणियों में अधिष्ठित हैं, प्रकाश व बल ही प्राणियों के आधार हैं। २. ये अग्नि और इन्द्र **प्रचर्षणी**=प्रकर्षेण सबको देखनेवाले हैं, **वृषणा**=ये सुखों का सेचन करनेवाले हैं तथा **वज्रबाहू**=गतिशील व वज्र के समान दृढ़ भुजाओंवाले हैं। उन **वृत्रहणा**=सब वासनाओं का विनाश करनेवाले **अग्निम् इन्द्रम्**=अग्नि और इन्द्र को, प्रकाश व बल के देवता को **अहम् हुवे**=मैं पुकारता हूँ। प्रकाश व बल की आराधना करता हुआ मैं वासनाओं से ऊपर उठता हूँ।

**भावार्थ**—अग्नि और इन्द्र (प्रकाश+बल) स्वर्ग को प्राप्त कराते हैं, ये सबके आधार बनते हैं, हमारा पालन करते हैं, सुखों का सेचन करते हैं, हमें क्रियाशील व दृढ़ बनाते हैं, हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

## बृहस्पति+इन्द्र

**उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः।**
**इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते॥ ३॥**

१. **त्वा**=तुझे **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति, ज्ञान का स्वामी **देवः**=प्रकाशमय प्रभु **चमसेन**=(तिर्यग् बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्) ज्ञान के आधारभूत मस्तिष्क के द्वारा **उपाग्रभीत्**=उपगृहीत करता है। प्रभु हमें ज्ञानपरिपूर्ण मस्तिष्क (चमस) प्राप्त कराके अपने समीप प्राप्त कराते हैं। २. हे **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभो! **नः**=हमारी **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **यजमानाय**=यज्ञशील **सुन्वते**=सोमाभिषव करनेवाले, शरीर में सोम-शक्ति का सम्पादन करनेवाले, पुरुष के लिए **आविश**=प्राप्त होओ।

**भावार्थ**—बृहस्पति का आराधन हमें ज्ञानपूर्ण मस्तिष्क प्राप्त कराता है। इन्द्र का स्तवन हमें शक्तिशाली बनाता है, इन्द्र बनकर हम सोम (शक्ति) का पान करते हुए शक्तिसम्पन्न बनते हैं। इस शक्ति का विनियोग हम यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने में ही करते हैं।

ज्ञान व शक्ति के समन्वय से बढ़ा हुआ 'ब्रह्मा' अगले सूक्त का ऋषि है—

# १११. [ एकादशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वृषभः** ॥ छन्दः—**पराबृहतीत्रिष्टुप्** ॥

## सोमधानः कुक्षिः

**इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम्।**
**इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम्॥ १॥**

१. अपने जठर को ही सम्बोधित करता हुआ यह 'ब्रह्मा' कहता है कि तू **इन्द्रस्य**=एक जितेन्द्रिय पुरुष का **कुक्षिः असि**=जठर (उदर) है, इसीलिए तू **सोमधानः**=सोम का आधार है, तुझमें सोम सुरक्षितरूप में रहता है। अथवा तू सौम्य (वानस्पतिक) भोजनों को ही अपने में स्थापित करनेवाला है, कभी मांसाहार नहीं करता। तू **देवानां उत मानुषाणाम्**=देवों का तथा

विचारशील पुरुषों का **आत्मा**=शरीर है। तुझमें दिव्य गुणों व मानवता का निवास है। मांसाहार मनुष्य को दिव्य गुणों व मानवता से दूर ले-जाता है। २. प्रभु कहते हैं कि हे सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष! **इह**=यहाँ गृहस्थ में **प्रजाः जनय**=सन्तानों को जन्म दे। **याः**=जो **ते**=तेरी प्रजाएँ **आसु**=इन्हीं जन्मभूमियों में निवास करती हैं, **याः अन्यत्र**=और जो अन्यत्र दूर देशों में हैं, **ताः**=वे **ते**=तेरी प्रजाएँ **इह**=इस जीवन में **रमन्ताम्**=सुखी हों।

**भावार्थ**—हम जितेन्द्रिय बनकर सोम का रक्षण करें और सौम्य भोजनों को ही खाएँ। इसप्रकार हम दिव्य गुणों व मानवता को अपने में स्थान दें। इस जीवन में उत्तम सन्तानों को जन्म दें। ये सन्तान यहाँ हों या कहीं दूर—वे आनन्द में रहें।

सोम का रक्षण करता हुआ पाप का निवारण करनेवाला 'वरुण' अगले सूक्त का ऋषि है—

## ११२. [ द्वादशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**वरुणः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

### शुम्भनी द्यावापृथिवी

**शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते।**
**आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १॥**

१. **शुम्भनी**=शोभादायक **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर **अन्तिसुम्ने**=(अम् गतौ, सुम्नं सुखम्) गति के द्वारा सुख देनेवाले हैं अथवा आन्तरिक (अन्ति=समीप) सुख उत्पन्न करनेवाले हैं और **महिव्रते**=महनीय व्रतोंवाले हैं। २. यहाँ—इस शरीर में **सप्त आपः सुस्रुवुः**=सात ज्ञानजल की धाराएँ बह रही हैं। 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' ये सात शीर्षण्य प्राण 'सप्तर्षि' कहलाते हैं। इनसे सात ज्ञानजल की धाराओं का प्रवाह शरीर में निरन्तर चलता है, **ताः**=वे द्यावापृथिवी तथा सात ज्ञान-जल धाराएँ **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पाप से मुक्त करें।

**भावार्थ**—मस्तिष्क की दीप्ति, शरीर का स्वास्थ्य तथा सात ज्ञान-जल धाराएँ हमें अशुभ वृत्तियों से बचाती हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

### शपथ्यात्, वरुण्यात्

**मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्या ऽ दुत।**
**अथो यमस्य पड्बीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥ २॥**

व्याख्या देखें—अथर्व० ६.९६.२ पर।

अपने को ज्ञानाग्नि में खूब ही परिपक्व करनेवाला 'भार्गव' अगले दो सूक्तों का ऋषि है—

## ११३. [ त्रयोदशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भार्गवः**॥ देवता—**तृष्टिका**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥

### कर्कशता

**तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके। यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते॥ १॥**

१. (तृष्ट=Harsh, pungent, rugged, hoarse) हे **तृष्टिके**=वाणी की कर्कशते! **तृष्टवन्दने**=कर्कश स्तुतिवाली **तृष्टिके**=कुत्सितदाहजनिके कर्कशते! तू **अमूं उत् छिन्धि**=उस कर्कश वाणी बोलनेवाली जिह्वा को ही छिन्न करनेवाली हो। जो कर्कश वाणी बोले, वह उस कर्कशता से अपनी जिह्वा को ही छिन्न करनेवाला बने। २. **अमुष्मै**=उस **शेप्यावते**=(शेपः बलम्) प्रशस्त बलवाले पुरुष के लिए तू **यथा**=जिस प्रकार **कृतद्विष्टा**=किये हुए द्वेषवाली

**असः**=है, उसी अनुपात में हे कर्कशते! तू उस कर्कशवाणी बोलनेवाली जिह्वा को ही छिन्न कर। वह शक्तिशाली पुरुष शान्त है। उसकी शान्ति ही इस कर्कश वाणी बोलनेवाले को और अधिक अशान्त व उत्तेजित कर नष्ट कर देती है।

**भावार्थ**—हम प्रशस्त शक्तिशाली पुरुषों के प्रति द्वेषवाले होकर कर्कश वाणी न बोलते रहें। ऐसा करने से हम अपनी जिह्वा को ही छिन्न कर बैठेंगे।

ऋषिः—**भार्गवः**॥ देवता—**तृष्टिका**॥ छन्दः—**शङ्कुमतीचतुष्पदाभुरिगुष्णिक्**॥

## तृष्टा=विषा

**तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्य ऽसि। परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव॥ २॥**

१. हे वाणि! तू **तृष्टा असि**=बड़ी कर्कशा है, **तृष्टिका**=कुत्सितदाहजनिका है। **विषा**=विषरूप तू **विषातकी असि**=(विषं आतंकयति संयोजयति) विष के संयोजन से जीवन को कष्टमय बना देनेवाली हैं। २. तू हमसे **यथा**=उसी प्रकार **परिवृक्ता अससि**=छोड़ी हुई हो, **इव**=जिस प्रकार **ऋषभस्य**=शक्ति-सेचन करनेवाले वृषभ से **वशा**=वन्ध्या गौ परिवृक्ता होती है। जैसे ऋषभ से वशा गौ उपभोग्या नहीं होती, इसी प्रकार शक्तिशाली पुरुष कर्कशवाणी का परित्याग ही करता है।

**भावार्थ**—कर्कशवाणी दाहजनिका है, विषरूप है, यह वन्ध्या है। शक्तिशाली पुरुष इसे सदा अपने से दूर रखता है।

## ११४. [ चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**भार्गवः**॥ देवता—**अग्नीषोमौ**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## ( अग्निषोमौ ) शत्रु-निराकरण

**आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद्ददे।**
**आ ते मुखस्य सङ्काशात्सर्वं ते वर्च आ ददे॥ १॥**

१. राष्ट्र का संचालक (सभापति) 'अग्नि' है। राष्ट्र में न्याय-व्यवस्था का अध्यक्ष (मुख्य न्यायाधीश) 'सोम' है। अग्नि और सोम इन दोनों को मिलकर राष्ट्र का सुप्रबन्ध करना होता है। राजा राष्ट्र के शत्रु को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि मैं **ते वक्षणाभ्यः**=तेरी छाती के अवयवों से बल को **आददे**=छीन लेता हूँ। **अहम्**=मैं **ते हृदयात्**=तेरे हृदय से बल का **आददे**=अपहरण करता हूँ। २. **ते मुखस्य संकाशात्**=तेरे मुख की समीपता से (संकाश=nearness) **ते सर्वं वर्चः आददे**=तेरे सारे तेज को छीन लेता हूँ, तुझे निस्तेज कर देता हूँ। (संकाश=Appearance) तेरे चेहरे को निस्तेज कर देता हूँ।

**भावार्थ**—अग्नि और सोम दोनों को मिलकर राष्ट्र के शत्रु को उचित दण्ड-व्यवस्था द्वारा निस्तेज करना चाहिए।

ऋषिः—**भार्गवः**॥ देवता—**अग्नीषोमौ**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## रोगों व राक्षसीवृत्तियों का विनाश

**प्रेतो यन्तु व्या ध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः।**
**अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः॥ २॥**

१. अग्नि ऐसा चाहता है कि **इतः**=यहाँ—इस राष्ट्र से **व्याध्यः**=सब रोग **प्रयन्तु**=दूर चले जाएँ। सफ़ाई आदि की व्यवस्था इतनी ठीक हो कि रोग उत्पन्न ही न हो पाएँ। **अनुध्याः प्र (यन्तु)**=सब अनुताप व दुश्चिन्तन दूर हों। **उ**=और **अशस्तयः प्र**=अस्तुतियाँ, परकृतनिन्दाएँ व हिंसाएँ दूर हों। २. इसप्रकार **अग्निः**=राष्ट्र का अग्रणी राजा राष्ट्र की **रक्षस्विनीः**=राक्षसी-

वृत्तिवाली शत्रु-सेनाओं को **हन्तु**=नष्ट करे तथा **सोमः**=सौम्य स्वभाववाला न्यायाधीश **दुरस्यतीः**=(दुष्टं परेषाम् इच्छन्तीः) दूसरों का अशुभ चाहनेवाली प्रजाओं को **हन्तु**=राष्ट्र से दूर करे। ये अग्नि और सोम राष्ट्र के अन्तः व बाह्य शत्रुओं को दूर करके राष्ट्र को सुव्यवस्थित करें।

**भावार्थ**—राष्ट्र से रोगों, अनुतापों, परनिन्दाओं व हिंसाओं को दूर करके सुव्यवस्थित किया जाए। अग्नि और सोम (राजा व न्यायाधीश) मिलकर राष्ट्र को बाहर व अन्दर के शत्रुओं से बचाएँ।

सुव्यवस्थित राष्ट्र में लोग स्थिर मनोवृत्तिवाले (अथर्वा) तथा सरस अंगोंवाले (अंगिराः) शक्ति-सम्पन्न बनें। व्याधिरहित शरीरवाले, अनुतापरहित मनवाले ये 'अथर्वाङ्गिरा' अगले चार सूक्तों के ऋषि हैं—

## ११५. [ पञ्चदशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**सविता, जातवेदाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

### 'पापी लक्ष्मी' का अदर्शन

**प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत। अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि॥ १॥**

१. हे **पापि लक्ष्मि**=पापरूपिणी लक्ष्मी (अर्थात् अलक्ष्मी) अन्याय्य मार्ग से कमाये गये धन! **इतः प्रपत**=यहाँ से दूर हो जा। **इतः नश्य**=इस प्रदेश से अदृष्ट हो जा। **अमुतः प्रपत**=अति दूर देश से भी तू दूर चला जा। अन्याय्य धन का हमारे यहाँ स्थान न हो। २. **अयस्मयेन अंकेन**=लोहे के बने हुए काँटे से **त्वा**=तुझे **द्विषते सजामसि**=शत्रु के लिए सम्बद्ध करते हैं। अन्याय्य मार्ग से अर्जित धन हमारे शत्रुओं के साथ ही सम्बद्ध हो। इस धन को हम अपने से दूर ही रक्खें।

**भावार्थ**—अन्याय्य मार्ग से प्राप्त होनेवाला धन हमसे दूर हो। इसका स्थान हमारे शत्रुओं में ही हो।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**सविता, जातवेदाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### शोषण की कारणभूत पतयालू लक्ष्मी

**या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।**
**अन्यत्रास्मत्सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः॥ २॥**

१. **या**=जो **पतयालूः**=नीचे गिरानेवाली, दुर्गति की कारणभूत **अजुष्टा**=अप्रिय, निन्द्य **लक्ष्मीः**=लक्ष्मी **मा अभिचस्कन्द**=मुझे अभितः व्याप्त करती है। जो मुझे इसप्रकार व्याप्त कर लेती है, **इव**=जैसेकि **वन्दना वृक्षम्**=एक लताविशेष वृक्ष को घेर लेती है। अथवा यह पतयालू अजुष्टा लक्ष्मी मेरा इसप्रकार शोषण कर देती है (स्कन्दिर् गतिशोषणयोः) जैसेकि अमरबेल वृक्ष का। प्ररूढ़ वन्दन-तरु की शुष्कता प्रसिद्ध ही है। यह लक्ष्मी भी वृक्षरूप मेरे लिए वन्दना लता ही बन जाती है। २. हे **सवितः**=सबके प्रेरक प्रभो! **ताम्**=उस पतयालू लक्ष्मी को **अस्मत्**=हमसे **इतः अन्यत्र**=यहाँ से अन्य देश में **धाः**=स्थापित कीजिए। **हिरण्यहस्तः**=सुवर्णमय हाथोंवाले आप, सुवर्ण को हाथों में लिये हुए आप **नः**=हमारे लिए **वसु**=धन **रराणः**=देनेवाले हो। आप हमें निवास के लिए आवश्यक धन प्राप्त कराइए।

**भावार्थ**—अन्याय्य धन हमारे शोषण का कारण बनता है। प्रभु उसे हमसे दूर करते हुए, हमारे निवास के लिए आवश्यक पवित्र धनों को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**सविता, जातवेदाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

## पापिष्ठा vs शिवा ( लक्ष्मी )

**एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा ∫ जनुषोऽधि जाताः।**
**तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ॥ ३॥**

१. **एकाशतं लक्ष्म्यः**=एकाधिकशत संख्याक (१०१) लक्ष्मियाँ **मर्त्यस्य**=मनुष्य के **तन्वा साकम्**=शरीर के साथ **जनुषः अधिजाताः**=जन्म से ही उत्पन्न हुई हैं। मनुष्य स्वभावतः ही सैकड़ों प्रकार से धनों के अर्जन की वृत्तिवाला होता है। २. **तासाम्**=उन लक्ष्मियों में से **पापिष्ठाः**=जो अतिशयेन पापी लक्ष्मियाँ हैं, उन्हें **इतः**=यहाँ से **निः प्रहिण्मः**=निःशेषरूप से अपसारित करते हैं। हम अन्याय्य मार्ग से अर्जित धनों को नहीं चाहते। हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! उनमें जो **शिवाः**=मंगलकारिणी लक्ष्मियाँ हैं, उन्हें **अस्मभ्यं नियच्छ**=हमारे लिए दीजिए।

**भावार्थ**—मनुष्य स्वभावतः सैकड़ों सरणियों से धन का अर्जन करने में प्रवृत्त होता है। हम पापिष्ठ लक्ष्मियों को अपने से दूर करें और प्रभु के अनुग्रह से न्याय्य मार्ग से ही मंगलकारिणी लक्ष्मी का अर्जन करें।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**सविता, जातवेदाः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

## रमन्तां पुण्याः लक्ष्मीः

**एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिताइव। रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्॥ ४॥**

१. **एताः**=ऊपर मन्त्र १ और २ में निर्दिष्ट **एनाः**=मन्त्र तीन में अन्वादिष्ट लक्ष्मियों को **व्याकरम्**=स्पष्ट रूप से अलग-अलग करता हूँ। उसी प्रकार **इव**=जैसेकि **खिले**=व्रज में (व्रजे—सा०) अथवा अनुपजाऊ भूमि पर **विष्ठिताः गाः**=मिलकर एक देश में स्थित गौओं को गोपाल उस-उस कार्य के लिए विवेकपूर्वक पृथक् करते हैं। २. उनमें **पुण्याः लक्ष्मीः**=जो कल्याणी लक्ष्मियाँ हैं, वे **रमन्ताम्**=मुझमें सुख से रहें। **याः पापीः**=जो पापकारिणी दुर्लक्ष्मियाँ हैं, **ताः अनीनशम्**=उन्हें अपने से दूर करता हूँ।

**भावार्थ**—विवेकपूर्वक पापी लक्ष्मियों को हम अपने से दूर करें, शुभ लक्ष्मियों को ही अपने समीप रखनेवाले हों।

## ११६. [ षोडशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**चन्द्रमाः, ज्वरः**॥ छन्दः—**१ परोष्णिक्, २ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुपेकावसाना**॥

## रूर व शीतज्वर

**नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे। नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने॥ १॥**
**यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्ये ∫ त्वव्रतः॥ २॥**

१. **च्यवनाय**=(च्यावयित्रे शारीरस्वेदपातयित्रे) अत्यधिक पसीना टपकानेवाले **नोदनाय**=इधर-उधर विक्षिप्त करनेवाले, **धृष्णवे**=अभिभूत कर लेनेवाले, दबा-सा देनेवाले **रूराय**=उष्णज्वर के लिए **नमः**=नमस्कार हो, यह ज्वर हमसे दूर ही रहे। इसी प्रकार **पूर्वकामकृत्वने**=चिरकाल तक पीड़ित करने के द्वारा पहली अभिलाषाओं को छिन्न कर देनेवाले ('इदं करोमि इदं करोमि' इति पूर्वं काम्यमानं अभिलाषं शीतज्वरः निकृन्तति चिरकालं बाधाकारित्वात्) **शीताय**=शीतज्वर के लिए भी **नमः**=नमस्कार हो। हम 'रूर व शीत' दोनों ज्वरों को ही दूर से नमस्कार करते हैं। २. **यः**=जो ज्वर **अन्येद्युः**=दूसरे दिन **इमम्**=इस पुरुष को **अभ्येति**=प्राप्त होता है और जो

**उभयद्युः**=(उभयोः दिवसयोःअतीतयोः) दो दिन बीत जाने पर (अभ्येति) आता है, अर्थात् चातुर्थिक ज्वर **अव्रतः**=अनियत कालवाला ज्वर **मण्डूकम् अभ्येतु**=मण्डूक को प्राप्त हो। (मण्डूकी=A wanton or unchaste woman) 'मण्डूक' अपवित्र आचरणवाले पुरुष का नाम है। इस अपवित्र पुरुष को ही यह ज्वर प्राप्त हो।

**भावार्थ**—हम पवित्र जीवनवाले बनकर,उष्णज्वर, शीतज्वर व चातुर्थिकादि ज्वरों से पीड़ित होने से बचें। मण्डूकवृत्तिवाले पुरुष को ही ये ज्वर प्राप्त हों।

## ११७. [ सप्तदशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

### विषय-मरुस्थली का लंघन

**आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।**
**मा त्वा के चिद्वि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥ १॥**

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **हरिभिः**=इन इन्द्रियाश्वों से **आयाहि**=हमारे समीप आनेवाला हो। उन इन्द्रियाश्वों से जोकि **मन्द्रैः**=प्रशंसनीय हैं और **मयूररोमभिः**=(मीनाति हिनस्ति इति मयूरः, रु शब्दे रोम) वासनाविध्वंसक शब्दों का उच्चारण करनेवाले हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ गम्भीर ज्ञानवाली होकर प्रशंसनीय हैं तो कर्मेन्द्रियाँ प्रभु के नामों का उच्चारण करती हुई वासनाओं का विनाश करनेवाली हैं। ये इन्द्रियाश्व हमें प्रभु की ओर ले-चलते हैं। २. इस जीवन-यात्रा में **त्वा**=तुझे **केचित्**=कोई भी विषय **मा वियमन्**=मत रोकनेवाले हों। तू विषयों से बीच में ही पकड़ न लिया जाए, **न**=जैसेकि **विं पाशिनः**=पक्षी को जालहस्त शिकारी पकड़ लेते हैं। विषय व्याध के समान हैं, हम इनके शिकञ्जे में न पड़ जाएँ। **तान्**=उन विषयों को **धन्व इव**=मरुस्थल की तरह **अति इहि**=लाँघकर तू हमारे समीप प्राप्त होनेवाला हो। विषय वस्तुतः मरुस्थल हैं, उनमें कोई वास्तविक आनन्द नहीं। उनमें फँसना तो मूढ़ता ही है।

**भावार्थ**—हम विषयों में न फँसते हुए प्रभु की ओर आगे बढ़नेवाले हों।

## ११८. [ अष्टादशोत्तरशततमं सूक्तम् ]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**सोमः,वरुणः,देवश्च** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

### वर्म, सोम, वरुण

**मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु वस्ताम्।**
**उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु॥ १॥**

१. जिन स्थानों पर विद्ध होकर मनुष्य शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है, उन्हें मर्म कहते हैं। **ते मर्माणि**=तेरे मर्मस्थलों को **वर्मणा छादयामि**=कवच के द्वारा आच्छादित करता हूँ। कवच से आछादित मर्मस्थल शत्रुओं से शीर्ण नहीं किये जाते। अब **राजा**=जीवन को दीप्त करनेवाला **सोमः**=सोम (वीर्य) **त्वा**=तुझे **अमृतेन अनुवस्ताम्**=नीरोगता से आच्छादित करे, अर्थात् सोम का रक्षण तुझे नीरोग बनाए। २. **वरुणः**=द्वेष निवारण की देवता **ते**=तेरे लिए **उरोः वरीयः**=विशाल से भी विशालतर सुख **कृणोतु**=करे। **जयन्तम्**=राग-द्वेषादि सब शत्रुओं को पराजित करते हुए **त्वा**=तुझे **देवाः**=सब देव, सब दिव्यभाव, **अनुमदन्तु**=अनुकूलता से हर्षित करनेवाले हों।

**भावार्थ**—ज्ञानरूप कवच हमारे मर्मों का रक्षण करे। सुरक्षित सोम हमें नीरोगता प्रदान करे और निर्द्वेषता की देवता हमें आनन्दित करनेवाली हो।

**॥ इति सप्तमं काण्डं समाप्तम्॥**